RNI No. : UPHIN-2009/29369

डाक पंजीकरण : MISC/CPM/01/KPHO/2019-21
प्रधान डाकघर कानपुर-डाक प्रेषण दिनांक 29/30

द्रविड़ भारत

वार्षिक सदस्यता शुल्क 100/-

www.dbindia.org.in

सामाजिक परिवर्तन का मासिक पत्र

गौतम बुद्ध

बाबा साहेब डा० अम्बेडकर

जून-2020 | वर्ष - 12 | अंक : 5 | मूल्य : 5/-

संत कबीर दास

संत रविदास जी

घासीदास

बिरसामुण्डा

पेरियार रामास्वामी

छत्रपति शाहूजी महाराज

सन्त गाडगे

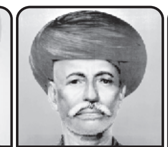
महात्मा ज्योतिबा राव फुले

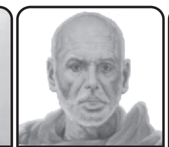
नारायण गुरु

सावित्री बाई फुले

कांशीराम

सम्पादकीय

RNI No. : UPHIN-2009/29369

संपादक : उमेश्वरी देवी, मो.: 9005204074
संरक्षक मण्डल : मा. रामदीन अहिरवार (महोबा), मा. राम अवतार चौधरी (इं. जल संस्थान), मा. छविलाल वर्मा (चरखारी), मा. हरिनाथ राम (दिल्ली), मनीष कुमार मो. 9415053621
राज्य ब्यूरो प्रमुख उत्तर प्रदेश : सुनीता धीमान, 414/12, शास्त्री नगर, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 9450871741
क्षेत्रीय सम्पादकीय कार्यालय :
40/69, डी-5, श्यामलाल का हाता, परेड, कानपुर (उ.प्र.), मो. : 8756157631
ब्यूरो प्रमुख कानपुर मण्डल :
पुष्पेन्द्र गौतम हिन्दुस्तानी, मल्हौसी, औरेया, उ.प्र. मो.: 9456207206
हरियाणा राज्य :
डा. रमेश रंगा, ग्राम-सराय, औरंगाबाद, पो.-बहादुरगढ़,जिला-झज्जर (हरियाणा),09416347052
कानूनी सलाहकार : एड. रामप्रकाश अहिरवार, एड. यू.के. यादव, मोती लाल वर्मा, एड. विजय बहादुर सिंह राजपूत, एड. रमाकान्त धुरिया, रामऔतार वर्मा, एड. सुशील कुमार, कानपुर
मध्य प्रदेश राज्य : पुष्पेन्द्र कुमार
कार्यालय : ग्रा. व पो.-रामटौरिया, जिला-छतरपुर
छत्तीसगढ़ राज्य :
दिलीप कुमार कोसले, मो. : 09424168170
दिल्ली प्रदेश : C/o अनिल कुमार कनौजिया C-260, हर्ष विहार, हरिनगर एक्सटेंशन पार्ट-III, बदरपुर, नई दिल्ली-44, मो. : 09540552317
राजस्थान राज्य : रघुनाथ बौद्ध, श्याम रघु फुट वियर, दुकान नं.-1, गणेश मार्केट, पुलिस चौकी के सामने, अलवर, जिला-अलवर-301001, मो. : 09887512360, 0144-3201516
चिरंजीलाल बैरवा (व्यावस्थापक) मेहरा आदर्श विद्या मन्दिर, भीम नगर कालोनी, राज भट्टा, दिल्ली रोड, अलवर, जिला-अलवर, मो.-09829855349
बाबूलाल बौद्ध, अलवर, मो.-08058198233
संपादकीय/विज्ञापन प्रसार/पंजीकृत कार्यालय :
ग्रा व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला-महोबा (उ.प्र.)
मो. : 9005204074, 8756157631
E-mail : dravinbharat1@gmail.com
प्रकाशक, मुद्रक एवं स्वामी
उमेश्वरी देवी द्वारा ग्रा. व पो.-रिवई (सुनैचा), जिला महोबा से प्रकाशित व श्रेय ऑफसेट प्रा. लि., 109/406, नेहरू नगर, कानपुर, 84/1, बी, फजलगंज, कानपुर से मुद्रित

प्रकाशित पत्रिका में प्रकाशित लेख, सामग्री, में संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं है। इसमें किसी भी प्रकार का दावा या विचार मान्य नहीं होगा। लेख के विवादित होने पर लेखक ही उत्तरदायी होगा समस्त विवादों का निपटारा महोबा न्यायालय में होगा पत्रिका का संपादन एवं संचालन पूर्णतयः अवैतनिक एवं अव्यवसायिक है।

मिशन को बढ़ाने के लिए सहयोग करें - भारतीय स्टेट बैंक, शाखा-नवीन मार्केट, कानपुर खाता सं.-33496621020•IFSC CODE-SBIN005307

पिछले अंक का शेष भाग ....

संघ बनाम स्वतंत्रता

(ख) इस अधिनियम में किसी भी कारण से किसी प्रकार के कर, उपकर, चुंगी लगाने अथवा बकाया वसूलने की शक्ति प्राप्त होगी, अगर उसके कारण प्रांत में निर्मित अथवा उत्पादित वस्तुओं और प्रांत में निर्मित अथवा उत्पादित न होने वाली उसी प्रकार की वस्तुओं के बीच पहले के पक्ष में भेदभाव उत्पन्न होता हो, और जिससे प्रांत से बाहर निर्मित अथवा उत्पादित वस्तुओं के मामले में, एक स्थान में निर्मित अथवा उत्पादित वस्तुओं तथा दूसरे स्थान में निर्मित अथवा उत्पादित उसी प्रकार की वस्तुओं के बीच भेदभाव उत्पन्न हो।

(2) कोई भी कानून जो इसके उल्लंघन में पारित किया गया हो, उल्लंघन की सीमा तक अमान्य होगा।

अब इस धारा की शर्तों के अनुसार यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यापार और वाणिज्य की स्वतंत्रता प्रांतों तक ही सीमित है। इसका अर्थ है कि देशी राज्य प्रांतों से आने वाले माल के प्रवेश को पूर्णतया रोकने में स्वतंत्र हैं अथवा उन पर सीमता शुल्क लगा सकते हैं। यह एक संघीय शासन की मूल भावना के विपरीत है। संघ की एक इकाई को दूसरी इकाई के विरूद्ध व्यापारिक युद्ध की इजाजत देना संघ को नकारने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

संघ के अंतर्गत जनता का संबंध

इस प्रश्न पर विचार करने से पूर्व यह आवश्यक है कि कतिपय विशिष्टताओं को स्पष्ट कर दिया जाए। 'राज्य' और 'समाज' बहुधा ऐसे प्रस्तुत किए जाते हैं, जैसे कि दोनों में विरोधाभास हो। लेकिन राज्य और समाज के मूल स्वरूप में कोई विभेद नहीं है। यह सही है कि राज्य की पूर्ण शक्तियां विधि द्वारा संचालित होती हैं, जब कि समाज अपनी पूर्ण शक्तियों के प्रवर्तन हेतु धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं पर आधारित होता है। लेकिन तथ्य यही है कि दोनों को बल प्रयोग की पूर्ण शक्तियां प्राप्त हैं। अतएव, राज्य और समाज में कोई विरोध नहीं है। दूसरे, जिन व्यक्तियों से समाज बनता है, वही व्यक्ति राज्य के भी सदस्य होते हैं। इस दृष्टि से भी राज्य और समाज में कोई अंतर नहीं है।

यद्यपि दोनों में एक अंतर है, लेकिन वह दूसरी किस्म का है। हर व्यक्ति जो समाज का सदस्य है और इसमें अधिवास करता है, यह आवश्यक नहीं है कि वह राज्य का भी सदस्य हो। वे जो सिर्फ राज्य की सीमा के अंतर्गत अधिवास करते हैं, जरूरी नहीं कि राज्य के सदस्य हों। जो राज्य से संबंध रखते हैं और जो संबंध नहीं रखते, उनके बीच यह भेद बहुत ही निर्णायक है और इसे भूलना नहीं चाहिए, क्योंकि इसके परिणाम महत्वपूर्ण हैं। जो राज्य से संबंध रखते हैं, वे सदस्य होते हैं और उन्हें सदस्यता से लाभ प्राप्त होते हैं, जिनमें राज्य से मिलने वाले संपूर्ण अधिकार और कर्त्तव्य शामिल हैं। कर्त्तव्य की दृष्टि से यह संबंध 'प्रजा' शब्द से भलीभांति जाना जाता है, अधिकारों की दृष्टि से इसे 'नागरिक' शब्द से अच्छी तरह परिभाषित किया गया है। इस विभेद में यह परिणाम विहित है कि जो राज्य में बिना इससे संबंध रखे अधिवास करते हैं, उन्हें सदस्यता का कोई लाभ प्राप्त नहीं होता, जिसका अर्थ है कि वे विदेशी हैं, नागरिक नहीं।

सिद्धांततः एक राज्य के नागरिकों और विदेशियों के बीच भेद करने की समस्या एक मामूली-सी समस्या जान पड़ती है, वास्तव में लगभग एक यांत्रिक समस्या। एक एकात्मक राज्य के विषय में यह खास तौर पर सच है। और यहां एक साधारण प्रश्न उठता है कि उस राज्य का किसी एक तथा समस्त विदेशी राज्यों से क्या संबंध हैं? एक संघीय राज्य में यह मामला इस तथ्य से उलझनपूर्ण है कि हर व्यक्ति के दोहरे संबंध होते हैं। एक ओर वह संपूर्ण रूप में संघीय राज्य से विशेष संबंध रखता है और दूसरी ओर उस राज्य से उसके विशेष संबंध होते है, जिसमें वह अधिवास करता है। अतः जिस क्षण संघीय राज्य में एक व्यक्ति की हैसियत परिभाषित करने की कोशिश की जाती है, उसी समय एक ही नहीं, वरन् कई प्रश्नों के उत्तर देने चाहिएः इस व्यक्ति का संघीय राज्य से, किसी एक और सभी विदेशी राज्यों के मुकाबले क्या संबंध है? इस व्यक्ति का उस राज्य से क्या संबंध है, जिसमें वह अधिवास करता है? साथ ही, क्या वह संभव है कि व्यक्ति एक राज्य का नागरिक तो हो, पर संघीय राज्य का नागरिक न हो।

ऐसे प्रश्न कनाडा और आस्ट्रेलिया में नहीं उठे, जब वे संघ बने। कारण यह था कि जो व्यक्ति अपनी संबंधित इकाइयों में अधिवास कर रहे थे, जे जन्मजात ब्रिटिश प्रजाजन थे। यह हैसियत उनके साथ तब भी बनी रही, जब संघ अस्तित्व में आया। संघ बनने पर संघ को नागरिकीकरण की शक्तियां प्राप्त हुईं और फलस्वरूप हर व्यक्ति जिसे संघ द्वारा नागरिकता प्राप्त हुई, संघ का नागरिक बन गया और इसीलिए इसकी हर इकाई का भी सदस्य बन गया।

ऐसे प्रश्न संयुक्त राज्य अमरीका, स्विट्जरलैंड और जर्मनी में भी उठे, क्योंकि संघ से पूर्व उनकी सभी इकाइयां विदेशी राज्य थे और उनके प्रजाजन विदेशी प्रजाजन थे। लेकिन यह विशेष ध्यान देने योग्य है कि इन सब मामलों में संघ के एक हिस्से के रूप में एक समान नागरिकता स्थापित की गई थी। एक ऐसा नियम बनाया गया, जिसके अंतर्गत यह स्वीकार किया गया कि एक इकाई की नागरिकता अपने संघ की नागरिकता लाती है। भारतीय संघ का मामला संयुक्त राज्य अमरीका, जर्मनी और स्विट्जरलैंड से मिलता-जुलता है। एक देशी राज्य की प्रजा ब्रिटिश भारत और साथ ही साथ किसी भी अन्य देशी राज्य में विदेशी है। ब्रिटिश भारतीय प्रांत का निवासी हर देशी राज्य में विदेशी है।

इस मामले में भारतीय संघ क्या करता है? क्या यह सभी इकाइयों को समान नागरिकता प्रदान करता है, जो संघ के सदस्य बन गए हैं? उत्तर है, नहीं। ब्रिटिश भारत का निवासी हर देशी राज्य में विदेशी माना जाएगा, यद्यपि यह संघ की स्थापना के बाद एक संघीय राज्य है, जैसे कि वह संघ की स्थापना के पूर्व था। उसी प्रकार एक संघीकृत देशी राज्य की प्रजा संघ के बाद हर ब्रिटिश भारतीय प्रांत में विदेशी रहेगी, जैसे कि वह संघ के पूर्व थी। यह एक समान नागरिकता नहीं है। संघ का पूर्ण सिद्धांत है कि एक संघीकृत राज्य का शासक राज्य का शासक रहेगा और

उसके प्रजाजन रहेंगे तथा सम्राट संघीकृत प्रांतों का शासक होने के नाते प्रांतों का शासक रहेगा और उसके प्रजाजन उसके प्रजाजन रहेंगे।

नागरिकता का यह अंतर दो विशेष तरीकों से व्यक्त होता है। प्रथमतः यह सेवा के अधिकार के मामले में अभिव्यक्त हैं, वे ही इसके अंतर्गत सेवा करने के अधिकारी हैं। इसे धारा 262 के अंतर्गत माना गया है। वास्तव में, यह राज्य के प्रजाजनों के साथ एक अन्याय है। इस अन्याय को रोकने के लिए, जो नागरिकता के अंतर के फलस्वरूप एक तार्किक परिणति है, भारत मंत्री को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह देशी राज्यों के प्रजाजनों को संघ के अंतर्गत नौकरी योग्य घोषित करें। यह एक विसंगतिपूर्ण स्थिति है और यद्यपि देशी राज्यों के प्रजाजनों के प्रति अन्याय को कम कर दिया गया है, देशी राज्यों में रोजगार के अधिकार के मामले में ब्रिटिश भारत के प्रजाजनों के प्रति अन्याय अभी कायम है, क्योंकि देशी राज्य यह घोषित नहीं करते कि ब्रिटिश भारत के प्रजाजन उनके अंतर्गत सेवा करने के पात्र होंगे। संध के बावजूद इस प्रकार की विसंगति होना यह प्रदर्शित करता है कि संघ एक सनक है।

दूसरे, अनुसूची (4)में विधानमंडल के सदस्यों द्वारा शपथग्रहण के स्वीकृत प्रारूप से नागरिकता का यही अंतर स्वयं स्पष्ट झलकता है।

वह सदस्य जो ब्रिटिश प्रजाजन है, उसके मामले में शपथ का प्रारूप निम्न प्रकार हैः मैं, अमुक, इस परिषद (या विधान सभा) का सदस्य निर्वाचित होने (अथवा नामित या नियुक्त होने) पर सत्यनिष्ठा से शपथ लेता हूं (अथवा प्रतिज्ञा करता हूं) कि मैं महामहिम भारत सम्राट, उसके वारिसों और उत्तराधिकारियों के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा और अपने कर्तव्य का विश्वासपूर्वक पालन करूंगा, जिसके लिए यहां प्रवेश ले रहा हूं।

उस व्यक्ति के मामले में जो कि एक देशी राज्य का नागरिक है, शपथ का प्रारूप निम्न प्रकार होगा :

मैं, अमुक, इस परिषद (या विधानसभा) का सदस्य निर्वाचित होने (या नामित अथवा नियुक्त होने) पर सत्यनिष्ठा से शपथ लेता हूं (अथवा प्रतिज्ञा करता हूं) कि मैं सी. डी. उसके उत्तराधिकारियों के प्रति निष्ठावान रहते हुए, इस परिषद (विधानसभा) के सदस्य के नाते महामहिम, भारत सम्राट, उनके वारिसों और उत्तराधिकारियों के प्रति विश्वासपात्र रहूंगा और मैं अपने कर्तव्य का पालन विश्वासपूर्वक करूंगा, जिसके लिए यहां प्रवेश ले रहा हूं। देशी राज्य का नागरिक, जैसा कि शपथ के प्रारूप से स्पष्ट है, दोहरी निष्ठा प्रकट करता है। उसे राज्य के शासक और सम्राट, दोनों के प्रति निष्ठा की शपथ लेनी पड़ती है। सामान्यतः ऐसी स्थिति अमरीका से बहुत अधिक भिन्न नहीं है। अमरीका में एक व्यक्ति संघ का भी नागरिक होता है तथा राज्य का भी, और दोनों शक्तियों के प्रति निष्ठावान होता है। हर शक्ति को अपनी आज्ञा–पालन कराने का अधिकार है। लेकिन किसी विवाद की स्थिति में किसकी आज्ञा का पालन किया जाए, इस संबंध में आप दोनों के बीच अंतर पाएंगे। इस प्रश्न पर ब्राइस का मत है :

राज्य का आज्ञा–पालन कराने का अधिकार, जिन विषयों में उसका दखल है, बहुत विस्तृत है। प्रथम दृष्टि में राज्य का हर कानून, राज्य के सक्षम प्राधिकारी का हर आदेश नागरिक को नियंत्रित करता है, जबकि राष्ट्रीय सरकार को सीमित शक्ति प्राप्त होती है; यह विधि–निर्माण कर सकती है अथवा कुछ खास उद्देश्यों के लिए या खास नागरिकों पर नियंत्रण रख सकती है। लेकिन अपनी शक्तियों की सीमा में राज्य से इसका प्राधिकार बड़ा होता है, जिसे राज्य की अवहेलना का जोखिम उठाते हुए भी माना जाना चाहिए।

एक राज्य विधानमंडल अथवा राज्य की कार्यपालिका की कोई कार्यवाही संविधान से अथवा राष्ट्रीय सरकार के किसी कार्य से टकराती है जिसे कि संविधान के अंतर्गत किया गया है, जो वास्तव में राज्य सरकार की कार्यवाही नहीं है क्योंकि राज्य सरकार कानूनी तौर पर संविधान के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकती, लेकिन गलत तौर पर उन कुछ व्यक्तियों की कार्यवाही है जो कि सरकार की तरह कार्य करते हैं, इसीलिए तथ्यतः ऐसी कार्यवाही न्यायिक रूप से अमान्य है। जो व्यक्ति राज्य के प्राधिकारी के आदेशों का सहारा लेकर संघ के प्राधिकार की अवज्ञा करते हैं, वे केन्द्र सरकार के विरूद्ध विद्रोही है, उन्हें केन्द्र सरकार द्वारा कुचल देना चाहिए। ऐसे विद्रोहियों का प्रपीड़न राज्य–विरूद्ध कार्यवाही नहीं, वरन ऐसे व्यक्तियों के प्रति है जो संगठित रूप से गलत कार्य करते हैं। एक राज्य न पृथक हो सकता है, न विद्रोह कर सकता है। इसी प्रकार इसका प्रपीड़न भी नहीं किया जा सकता। क्या निष्ठा संबंधी विवाद होने पर भारत में संघीय सरकार ऐसे कदम उठा सकती है, जो कि एक संघीय सरकार कर सकती है? निस्संदेह ऐसा नहीं किया जा सकता। इसका मामूली सा कारण है कि सम्राट के प्रति निष्ठा, शासक के प्रति निष्ठा का बचाव करती है। यदि यह एक खतरनाक स्थिति नहीं तो बहुत दुखद अवश्य है।

संघीय ढांचे की शक्ति

देश में जो सरकार संपूर्ण राष्ट्र का एकीकृत इच्छा के अनुरूप व्यक्त कर सकती हो और काम कर सकती हो, वास्तव में सबसे दृढ़ सरकार है, जो कि होनी चाहिए और आपातकाल में केवल एक मजबूत सरकार पर क्रियाशील रहने के लिए भरोसा किया जा सकता है। उस सरकारी व्यवस्था की कार्य–कुशलता बहुत कमजोर होती है, जहां एक देश में कई सरकारें कार्य करती हैं, जिनसे शक्ति के अलग–अलग केन्द्र बन जाते हैं, जिनमें अलग–अलग राजनीतिक संस्थाओं का समावेश होता है, और राष्ट्र की शक्ति अलग–अलग हिस्सों में प्रवाहित होती है, जिसका व्यक्तियों की तुलना में केन्द्रीय सरकार की इच्छा के मुकाबले प्रतिरोध अधिक प्रभावी होता है, क्योंकि ऐसी संस्थाओं में प्रत्येक को स्वयं एक सरकार मिली होती है, जिन्हें राजस्व, सैन्य और स्थानीय देशभक्ति की भावना जोड़े रहती है। पहले मामले में सरकार का स्वरूप एकात्मक होता है, दूसरे मामले में सरकार का स्वरूप संघीय होता है।

भारतीय संघ इस तथ्य के कारण कि यह एक संघ है, सरकार के संघीय स्वरूप की सभी कमजोरियां रखता है। लेकिन भारतीय संघ में कुछ और अधिक कमजोरियां है, जो अन्य संघों में नहीं मिलतीं, जिनकी वजह से वे इसे पूरी तरह कमजोर करती हैं। भारतीय संघ की संयुक्त राज्य अमरीका के संघ से तुलना की जाए। ब्राइस के कथनानुसार :

राष्ट्रीय सरकार का हर राज्य के नागरिकों पर सीधा और आसन्न प्राधिकार है, जिसका प्रयोग राज्य संगठनों के जरिए नहीं होता, न उसके लिए राज्य सरकार की मदद की आवश्यकता होती है। अधिकतर मामलों में राष्ट्रीय सरकार राज्यों की उपेक्षा करती है और नागरिकों को अपने कानून से समान रूप से बंधा हुआ मानती है। संघीय न्यायालय, राजस्व अधिकारी और डाकखाने राज्य के किसी भी अधिकारी की सहायता नहीं लेते, वरन् सीधे वाशिंगटन पर निर्भर करते हैं। संघीय मामलों में कोई स्थानीय स्वशासन नहीं होता। संघीय प्राधिकार, चाहे कार्यकारी हो अथवा न्यायिक, एक राज्य के नागरिक पर अपने निजी अधिकारियों के जरिए सीधे कार्रवाई करता है, जो कि राज्य कर्मचारियों से बिल्कुल भिन्न और स्वतंत्र होते हैं। उदाहरणार्थ, वाशिंगटन स्थित वित्त विभाग के आदेशानुसार संघीय सीमा शुल्क समाहर्ता और आबकारी अधिकारियों द्वारा संघीय परोक्ष कर तटीय क्षेत्रों और पूरे देश में लागू किए जाते हैं। अमरीका के मार्शल संघीय न्यायालय के निर्णयों का पालन कराते हैं, जो कि उसी प्रकार पूरे देश में फैले हुए हैं और सहायकों का अमला रखते हैं। यह एक अत्यंत महत्वपूर्ण प्रावधान है, क्योंकि इससे केन्द्रीय, राष्ट्रीय सरकार के लिए हर जगह लोगों पर उंगली रखना संभव होता है। वह अपने कानून बना सकती है और अपने विधिवत संगठित अभिकरणों के आदेशों का आदर करा सकती है, चाहे राज्य जिसकी कि सीमा में वह कार्य करती है, हृदय से स्वामिभक्त है या नहीं, और चाहे वह कानून जिसे वहां लागू किया जा रहा है, लोकप्रिय है अथवा हानिकारक। पूरे देश में राष्ट्रीय सरकार का संगठन इस तरह बिखरा होता है, जैसे धमनियां पूरे शरीर में फैली होती हैं, केन्द्रीय कार्यपालिका से हर बिन्दु को सीधे जोड़े हुए।

इसमें से एक भी चीज भारतीय संघ के विषय में निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती। यह एक आश्रित सरकार है और इसका लोगों से सीधा संबंध नहीं है।

संयुक्त राज्य में राज्यों के रूप में केन्द्रीय सरकार में कोई स्थान प्राप्त नहीं है और यद्यपि राज्यों द्वारा संघीय विधान–मंडल के लिए प्रतिनिधियों का निर्वाचन किया जाता है, केन्द्र के राजनीतिक कार्य राज्य से संबंध नहीं रखते। समूहों में राज्यों का कोई संयोजन नहीं है और राज्यों में यह प्रचलन भी नहीं है कि वे आधिकारिक तौर पर अपने राज्य संगठनों को संयोजित करें। भारतीय संघ कितना भिन्न है? राज्यों को विधिसम्मत मान्यता प्राप्त है, उन्हें विधिसम्मत विमुक्ति और विधि से उन्मुक्ति मिली हुई है। यहां इन विमुक्तियों और उन्मुक्तियों के कारण राज्यों और प्रांतों द्वारा संयुक्त कार्रवाई और प्रतिकार की प्रबल संभावनाएं हैं। यह एक दूसरा कारण है, जो इस धारणा को जन्म देता है कि भारतीय संघ में बहुत कम जीवन शक्ति है।

6

संघीय योजना के लाभ

संघीय योजना के पक्षधरों ने योजना को स्वीकार करने के लिए तीन आधार प्रस्तुत किए हैं। पहला आधार है कि यह भारत की एकता में सहायता करता है। दूसरा आधार है कि यह ब्रिटिश भारत द्वारा भारतीय भारत को प्रभावित करने और क्रमशः निरंकुश शासन तंत्र को जो भारतीय भारत में बरकरार है, ऐसे लोकतंत्र में बदलने के लिए जैसा कि ब्रिटिश भारत में है, सक्षम बनाती है। तीसरा आधार है कि संघीय योजना एक ऐसी योजना है, जिसमें एक उत्तरदायी सरकार मूर्त रूप में विराजमान है।

इन तीनों योजनाओं के समर्थक इतनी प्रबलता से संघीय योजना के पक्ष में ये तीनों तर्क इतनी गंभीरता से और साधिकार प्रस्तुत करते हैं कि यह आवश्यक हो जाता है कि इनमें विहित सारतत्व पर विचार किया जाए।

संघ और भारत की एकता

वास्तव में, सरकार की एक सामान्य प्रणाली के बहुत यथार्थ फायदे होते हैं। विधि की एक समान प्रणाली, प्रशासन की समान प्रणाली और एकता की भावना रखना सद्जीवन के सारभूत तत्व हैं। सरकार की एक समान प्रणाली के अंतर्गत एक समान जीवन में इन सबका प्रतिपालन होता है। शेष चीजें समान होने पर, संपूर्ण भारत के लिए सरकार की एक समान प्रणाली के रूप में एक संघ की परिकल्पना स्वागत योग्य है। लेकिन क्या भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत यह संघ संपूर्ण राज्य–क्षेत्र को, जिसे भारत कहते हैं, एक सरकार प्रणाली के अंतर्गत गठित करता है? क्या यह एक अविरल भारतीय संघ है?

यह सही है कि इस संघ में ब्रिटिश भारत सम्मिलित है। जब प्रांतों को संघ की इकाई घोषित किया जाता है तो इसका अर्थ है कि ब्रिटिश भारत संघ में सम्मिलित है। राज्यों को, जिन्हे भारतीय भारत कहते हैं, संघ की इकाई घोषित कर दिया गया है। भारतीय भारत कोई मामूली क्षेत्र नहीं है। ब्रिटिश भारत और भारतीय भारत के विषक में आगे दिए गए क्षेत्रफल और जनसंख्या के आंकड़े एक तुलनात्मक स्थिति बताएंगे :

इससे मालूम होता है कि भारतीय भारत में 39 प्रतिशत जनसंख्या है और समस्त भारत का 31 प्रतिशत क्षेत्रफल है।

कितना भारतीय भारत इस संघ में शामिल किया जा रहा है?

बहुतेरे यह कहना चाहेंगे कि चूंकि यह अखिल भारतीय संघ के रूप में बोला जाता है, इस क्षेत्र का प्रत्येक इंच संघ में शामिल किया जाएगा और यह संघीय सरकार के प्राधिकार के अंतर्गत रहेगा। निःसंदेह इस तरह की धारणा धारा 6(1) की शब्दावली से ध्वनित होती है जो राज्यों के विलय से संबंधित है। यह धारा एक

शासक के संघ में सम्मिलित होने की इच्छा के बारे में बताती है और तदनुरूप यह सुझाती है कि प्रत्येक देशी राज्य को संघ में शामिल हो जाना चाहिए। अगर यह सही है तो निस्संदेह कालांतर में संघ एक अखिल भारतीय संघ बन सकेगा। लेकिन यह धारणा गलत है। यदि धारा 6(1) को अधिनियम की अनुसूची 1 के साथ पढ़ें तो यह धारणा निर्मूल सिद्ध होगी। अनुसूची 1 मात्र एक ऐसी अनुसूची मानी जाती है, जिसमें शासकों की सीटों की तालिका दी गई है। अनुसूची का यह एक अपूर्ण अध्ययन है। यह अनुसूची इससे भी कुछ और अधिक है। यह सीटों की मात्र तालिका ही प्रस्तुत नहीं करती, वरन राज्यों के संघ में सम्मिलित होने की पात्रता भी गिनाती है और तदनुरूप उनके लिए अधिकाधिक सीटें निश्चित करती है, जो यदि चाहें तो संघ में सम्मिलित हो सकते हैं। अनुसूची 1 में प्रदर्शित सीटों की तालिका की यह विशेषता है।

संघ में शामिल हो सकने वाले देशी राज्यों की कुल संख्या क्या है? अनुसूची 1 में ऐसी संख्या 147 तक है। अनुसूची में जो सीमा तय की गई है, उसके बारे में कई सवाल उठते हैं सरकारी आंकड़ों के अनुसार भारत में कुल 627 राज्य हैं। इसका तात्पय है, 480 राज्य संघ के बाहर रहेंगे और संघ का कभी भी हिस्सा नहीं बन सकते। क्या इसे एक अखिल भारतीय संघ कह सकते हैं? अगर इसे एक अखिल भारतीय संघ बनना है तो इन राज्यों को अलग क्यों रखा गया है? इन बहिष्कृत राज्यों की क्या स्थिति है? अगर वे प्रभुसत्ता वाले राज्य नहीं हैं तो उन्हें संघ में क्यों शामिल किया जा रहा है? यदि वे प्रभुसत्ता–विहीन राज्य हैं और उनकी प्रभुसत्ता ब्रिटिश सम्राट के साथ है तो ब्रिटिश सम्राट के इन क्षेत्रों के विषय में संघ को प्रभुसत्ता क्यों हस्तांरित नहीं की है? ऐसे बहिष्कृत राज्य की अंतिम नियति क्या होगी? क्या उनका अन्य देशी राज्यों में विलय हो जाएगा अथवा उनका कुछ भारतीय प्रांतों में विलीनीकरण हो जाएगा? मैं इन सबका इसलिए उल्लेख कर रहा हूं कि प्रथमतः मैं यह बताना चाहता हूं कि यह संघ एक अखिल भारतीय संघ नहीं है, और दूसरे, मैं कुछ देशी राज्यों के इन कदमों की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं कि वे इन बहिष्कृत राज्यों का अपने अंतर्गत विलय चाहते हैं।

एक दूसरा सवाल भी उठाया जा सकता है। क्या यह संघ ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों की जनता को एक राष्ट्र में संगठित करने में मदद करेगा?

एक संघ आवश्यक तौर पर एक संगठित समुदाय होता है। इसके अंतर्गत जो इकाइयां होती है वे छोटे राजनीतिक समुदाय होते हैं। इकाइयों के ऊपर बहुत बड़ा राजनीतिक समुदाय होता है, जिसे संघ कहते हैं। क्या ये विभिन्न राजनीतिक समुदाय मात्र राजनीतिक संगठन बने रहेंगे अथवा एक सामान्य सामाजिक ढांचे में विकसित होंगे, जिसका अंतिम उद्देश्य एक राष्ट्र का निर्माण करना है? यह सब इस बात पर आधारित रहेगा कि इनके संगठनों का क्या प्रारूप बनता है। ब्राइस के कथनानुसारः

एक बड़े राजनीतिक समुदाय के अंतर्गत जब छोटे समुदाय का अस्तित्व मिलता है तो छोटे का बड़े के साथ आमतौर पर जो एक या दो तरह का संबंध दिखाई देता है, वह दो प्रकार का होता है। एक रूप है लीग का जिसमें कई राजनीतिक संगठन, चाहे वे राजतंत्र हो या लोकतंत्र, किसी विशेष उद्देश्य से इस प्रकार गठित होते हैं, विशेषतया सामान्य सुरक्षा के विषय में, जिससे एक संगठित संस्था का आभास हो। ऐसे संगठित समुदाय या लीग के सदस्य मनुष्य नहीं, वरन् समुदाय होते हैं। यह समुदायों के कुल योग से बनती है। इसलिए समुदाय, जिनसे इसका निर्माण होता है, जब एक–दूसरे से अलग होते हैं तो इसका शीघ्र ही अंत हो जाता है। साथ ही इसका संबंध समुदाय से ही होता है और उन्हीं के साथ कार्य–व्यापार चलता है। नागरिक से इसका कोई संबंध नहीं होता, न उससे कर उगाही की जाती है, न उसके लिए न्याय व्यवस्था की जाती है, न ही उसके लिए विधि का निर्माण किया जाता है, क्योंकि इन सभी मामलों में उसकी निष्ठा अपने निजी समुदाय से ही होती है।

दूसरे प्रारूप में, छोटे समुदाय बड़े की मात्र उप–शाखाएं होती हैं, जिन्हें हम राष्ट्र कहते हैं। उनका निर्माण किया गया है, अथवा वे येनकेन प्रकारेण सिर्फ प्रशासनिक दृष्टि से अस्तित्व में हैं। उनके पास जो शक्तियां हैं, वे राष्ट्र अपने अधिकारियों के जरिए सीधे काम करता है, मात्र समुदायों पर नहीं, वरन हर एकल नागरिक और राष्ट्र पर, क्योंकि यह इन समुदायों से स्वतंत्र है, इसका अस्तित्व बना रहेगा, वे सब मिट जाएंगे।....

प्रथम मामले में सरकार का स्वरूप महासंघ का है। दूसरे मामले में सरकार का स्वरूप एकात्मक है। एक संघीय सरकार इन दोनों के मध्य में है। तथापि यह धारणा नहीं बनानी चाहिए कि राष्ट्रवाद सिर्फ एकात्मक सरकार में ही सुसंगत है और संघीय सरकार में असंगत है। यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि एक राष्ट्र बना हुआ मिल सकता है, उसी प्रकार एक राष्ट्र बनाया भी जा सकता है। एक संघीय सरकार में प्रारंभ में कोई राष्ट्र नहीं होता, यह एक विजातीय समुदायों का संकलन होता है। लेकिन यह संभव है कि एक संघीय सरकार में अंततः एक राष्ट्र का उदय हो। सबसे अधिक असाधारण उदाहरण संयुक्त राज्य अमरीका का है। ब्राइस एक बड़ी मजेदार और उद्देश्यपूर्ण कथा का जिक्र करते हैं, जिसे मैं उन्हीं के शब्दों में दे रहा हूं :

कुछ वर्ष पूर्व अमरीकन प्रोटेस्टेंट एपिस्कोपल चर्च अपने त्रैवार्षिक समारोह में अपनी उपासना पद्धति संशोधित करने में व्यस्त थे। इस बात की आवश्यकता समझी गई कि सभी व्यक्तियों के लिए संक्षिप्त वाक्य में एक प्रार्थना प्रचलित की जाए और एक प्रमुख नव–आंग्ल धर्मावलंबी ने कुछ शब्द सुझाए, 'हे परमात्मा, हमारे राष्ट्र को आशीर्वाद दो।' सभी ने एक के बाद एक इसका उसी क्षण अनुमोदन किया। दूसरे दिन इस वाक्य पर पुनर्विचार किया गया, तब अविज्ञ–जनों ने 'राष्ट्र' शब्द पर कई आपत्तियां उठाईं और राष्ट्रीय एकता की मान्यता को परिभाषित किया गया। यहां तक कि इसे विवादित समझ कर समाप्त कर दिया गया और इसकी जगह ये शब्द अनुमोदित किए गए, 'हे परमात्मा, इस संयुक्त राज्य को आशीर्वाद दो। 'ईश्वर की इस प्रर्थाना के बावजूद, राज्यों के मुकाबले में एक राष्ट्र के विचार को प्रोत्साहन देने में अरूचि होने के बावजूद और सरकार के संघीय स्वरूप के बावजूद संयुक्त राज्य एक राष्ट्र है। यह एक राष्ट्र है, सामाजिक अर्थ में यह शब्द निर्विवाद है।

संयुक्त राज्य में यह किस प्रकार घटित हुआ? क्या संघीय योजना में हम इसे भारत में घटित होते देखना चाहते हैं? ब्राइस इसका वर्णन करते हैं कि यह सब अमरीका में कैसे हुआ। वह कहते हैं कि 'अमरीका में केन्द्रीय या राष्ट्रीय सरकार मात्र एक लीग नहीं है, क्योंकि यह पूरी तरह इस में सम्मिलित समुदायों पर आश्रित नहीं है, जिन्हें हम राज्य कहते हैं। यह स्वयं एक राष्ट्रकुल और साथ ही राष्ट्रकुलों का संघ है, क्योंकि यह सीधे ही हर नागरिक से आज्ञाकारिता की अपेक्षा करता है और न्यायालयों तथा कार्यकारी अधिकारियों के जरिए उस पर सीधी कार्रवाई कर सकता है। 'यह कर लगा सकता है, उसके लिए विधि–निर्माण कर सकता है और उसे न्याय प्रदान कर सकता है। संक्षेप में, यह सरकार की प्रक्रिया है, जो व्यापक रूप में, अगर पूर्णरूपेण नहीं तो अमरीका के निवासियों को एक राष्ट्र में बदलने के लिए उत्तरदायी है और यह तभी संभव हुआ, जब कि संयुक्त राज्य की सरकार राज्य की सरकार के संघीय स्वरूप में राष्ट्रीय सरकार और व्यक्ति के मध्य सीधे संपर्क का प्रावधान है।

क्या यह भारतीय संघीय शासन में संभव है? मेरा उत्तर है कि यह संभव नहीं है। देशी राज्यों के लोग राज्यों की प्रजा बने रहते हैं। संघीय सरकार उनसे सीधे कोई कार्य–व्यवहार नहीं कर सकती। हर चीज राज्य के माध्यम से होती है। दोनों में कोई संपर्क नहीं है, यहां तक कि कराधान के मामले में भी। तो यह भावना देशी राज्यों के लोगों में कैसे उत्पन्न होगी कि उनका राष्ट्रीय सरकार से संबंध है, जब कि उन्हें किसी भी और हर प्रभाव से बहिष्कृत किया गया है और यह भी अनुभव नहीं होने दिया गया कि कोई राष्ट्रीय सरकार भी है? मुझे भय है कि भारत का यह संयुक्त राज्य मात्र संयुक्त राज्य जैसी संस्था के अतिरिक्त कुछ और नहीं होगा। इसमें इन राज्यों में से एक राष्ट्र–निर्माण की शक्ति का अभाव है और संभवतः इस योजना के निर्माताओं का यह इरादा कभी भी नहीं रहा होगा।

निरंकुश शासनों का प्रजातंत्रीकरण

संघीय योजना का एक अन्य लाभ उसके पक्षधरों ने बताया कि यह ब्रिटिश भारत के नव–लोकतंत्रों और देशी राज्यों के प्राचीन निरंकुश शासन तंत्र को एकल राजनीतिक प्रासाद की छत्रछाया में लाता है और इन दोनों को एक प्रासाद के नीचे लाने से प्रजातंत्र और निरंकुश शासन तंत्र के पारस्परिक संबंध को बढ़ाता है, और ब्रिटिश भारत के प्रजातंत्र द्वारा देशी राज्यों के स्वेच्छाचारी शासन के प्रजातंत्रीकरण की प्रक्रिया को सामर्थ्य प्रदान कराता है। इसको परखने के लिए और इसमें कितनी शक्ति विहित है, इसके विषय में यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि भौगोलिक आधार पर देशी राज्य और ब्रिटिश भारत के प्रांत निकट हैं। उनमें नियमित संपर्क है। ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के निवासी जातीय, भाषायी और सांस्कृतिक तौर पर एक समग्र के ही हिस्से हैं। इन सभी संपर्कों और जाति, धर्म, भाषा और संस्कृति की समग्र एकता के बावजूद ब्रिटिश भारत ने देशी राज्यों में प्रचलित शासन व्यवस्था के स्वरूप को प्रभावित नहीं किया है। इसके विपरीत जब कि ब्रिटिश भारत निरंकुशता से प्रजातंत्र की ओर अग्रसर हुआ है, देशी राज्य अपनी स्थिर शासन–प्रणाली के साथ उसी प्रकार बने हुए हैं। इसलिए जब तक अधिनियम में कोई विशेष बात नहीं आती जो कि ब्रिटिश भारत को यह सामर्थ्य प्रदान कर सके कि वह अपने विधानमंडल और कार्यपालिका द्वारा देशी राज्यों को प्रभावित करे, तक इस तर्क में कोई सार नहीं है। क्या इस अधिनियम में ऐसी कोई चीज है, जो ब्रिटिश भारत को यह शक्ति प्रदान करती है कि वह राज्यों को प्रभावित कर सके? इस संबंध में धारा 34(1) का अवलोकन किया जाना चाहिए, जिसका संबंध विधानमंडल में बजट प्रावधानों पर वाद–विवाद और मतदान प्रक्रिया से है।

इस धारा की जांच करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि धारा 33 की उपधारा (3) के पैरा (क) और पैरा (च) से संबंधित प्राक्कलनों पर संघीय विधानमंडल में बहस भी नहीं हो सकती है। उपधारा (3) के पैरा (क) में गवर्नर–जनरल के वेतन, भत्तों और उसके कार्यालय तथा अन्य खर्चे की मदों का जिक्र है, जिसके प्राक्कलन आर्डर–इन–काउंसिल द्वारा तैयार किए जाते हैं। पैरा (च) का संबंध इस अधिनियम के अंतर्गत महामहिम को संघ के राजस्व में से देय उस धन से है जिसे वह देशी राज्यों के प्रति कृत्यों के निर्वहन हेतु व्यय करते हैं। एक अन्य धारा जिसका कि संबंध इस विषय से है, वह धारा 38 है। धारा वह धारा है, जो संघीय विधानमंडल की कार्यवाही को विनियमित करने की प्रक्रिया विषयक नियम बनाने से संबंध रखती है। जब कि यह धारा संघीय विधानमंडल को अपने नियम स्वयं बनाने की अनुमति प्रदान करती है, यह गवर्नर–जनरल को नियम बनाने की अनुमति देती है।

(ग) बहस को रोकने, अथवा किसी भी ऐसे विषय पर प्रश्न न पूछने देने के लिए जिसका संबंध किसी देशी राज्य से है, किसी ऐसे मामले को छोड़कर जिनके विषय में संघीय विधान–मंडल राज्य के लिए विधि बनाने में सक्षम है, जब तक कि गवर्नर–जनरल स्वविवेक से संतुष्ट न हो कि यह मामला संघीय हित अथवा ब्रिटिश प्रजातंत्र को प्रभावित करता है और उसने मामले पर बहस करने और सवाल पूछे जाने की अनुमति न दे दी हो।

(घ) रोकने के लिए –

(1) बहस अथवा किसी ऐसे विषय से संबंधित प्रश्नों का पूछा जाना, जिनका संबंध महामहिम अथवा गवर्नर–जनरल और किसी विदेशी राज्य अथवा राजा के मध्य आपसी संबंधों से है, और

(2) बहस, व्यय के प्राक्कलनों को छोड़कर, जो किसी आदिवासी क्षेत्र अथवा बहिष्कृत क्षेत्र के प्रशासन के संबंध रखते हैं, उन प्रश्नों का पूछा जाना, अथवा

(3) किसी देशी राज्य के शासक के व्यक्तिगत आचरण अथवा किसी सत्तारूढ़ परिवार के विषय में बहस अथवा प्रश्नों का पूछा जाना।

इस धारा में आगे यह भी प्रावधान है कि यदि गवर्नर–जनरल द्वारा निर्मित कोई नियम सदन द्वारा निर्मित किन्हीं नियमों के विरूद्ध हो, तो गवर्नर–जनरल द्वारा निर्मित नियम वैध होंगे।

एक अन्य धारा जो इस बिन्दु पर प्रकाश डालती है, वह धारा 40 है। यह कहती है, संघीय विधानमंडल में संघीय न्यायालय या उच्च न्यायालय के किसी न्यायाधीश द्वारा अपने कर्तव्य पालन के दौरान किए गए किसी कार्य के बारे में किसी भी प्रकार का वाद–विवाद नहीं किया जा सकेगा, और इसमें दिया गया है कि इस उपधारा के अंतर्गत किसी उच्च न्यायालय को सौंपा गया मामला किसी संघीकृत राज्य के न्यायालय को संदर्भित माना जाएगा, जो इस अधिनियम के खंड 9 के अधीन किसी भी उद्देश्य हेतु एक उच्च न्यायालय के रूप में प्रतिष्ठित है। अधिनियम के इस उपखंड में इसी प्रकार के प्रावधान भी दिए गए है, जिसका संबंध प्रांतीय विधान मंडलों के गठन से है। धारा 84, धारा 38 की प्रतिपूरक है और प्रांतीय विधान–मंडल के किसी भी सदस्य को किसी भी देशी राज्य के शासक के व्यक्तिगत आचरण अथवा राज्य के मामले में प्रश्न पूछने से रोकती है। धारा 86, धारा 40 की प्रतिपूरक है।

अब यह सुस्पष्ट है कि एक विधानमंडल के सामने प्रशासन के व्यवहार को प्रभावित करने के लिए जो दो सर्वाधिक महत्वपूर्ण रास्ते खुले हुए हैं, वे हैं, बजट पर वाद–विवाद करना और प्रश्न पूछना। बजट पर बहस की शुरुआत के पीछे यह सिद्धांत है कि कार्यपालिका को प्रदाय तब तक प्रदान नहीं किए जाएंगे, जब तक कि वह जनता की तकलीफों को दूर नहीं करती। प्रजातंत्र का नारा है – धन दिए जाने से पहले शिकायतें दूर करो। बजट पर बहस द्वारा जनता की शिकायतें कार्यपालिका के समक्ष प्रस्तुत की जा सकती हैं। इसलिए यह एक वैध विशेषाधिकार है, जैसा कि धारा 34 से ज्ञात होता है, सदन में राज्यों की शिकायतें कार्यपालिका के समक्ष न रखी जाने पर विधानमंडल को प्रतिबंधित किया जाता है। इस प्रकार पूछताछ करने और प्रश्न पूछने का अधिकार प्राप्त है जो वैध विशेषाधिकार है, लेकिन उसे भी छीन लिया गया है। विधानमंडल को सदैव उचित प्रस्ताव पर न्यायपालिका के आचरण की आलोचना करने का अधिकार प्राप्त है, लेकिन उसे भी निकाल दिया गया है। यह देखना बड़ा मुश्किल है कि संघीय विधानमंडल वास्तव में देशी राज्यों के आंतरिक प्रशासन को किस तरह प्रभावित करता है। राज्यों के आंतरिक प्रशासन के विषय में कोई प्रश्न पूछने अथवा प्रस्ताव लाने की न सिर्फ ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों को मनाही है, वरन् यही अयोग्यता राज्यों के प्रतिनिधियों पर भी थोपी गई है, जो कि कुप्रशासन के शिकार हैं।

संघीकृत राज्यों द्वारा ब्रिटिश भारत पर जिस प्रभाव का प्रयोग किया जा सकता है, अब उसकी तुलना की जाए।

प्रथमतः, संघीकृत राज्यों के प्रतिनिधियों को संघीय विधानमंडल में किसी प्रश्न को पूछने या किसी मामले को उठाने पर प्रतिबंध नहीं है। यह तथ्य कि कोई प्रश्न अथवा मामला ब्रिटिश भारत से सरोकार रखता है अथवा ब्रिटिश भारत के आंतरिक प्रशासन से संबंधित रखता है, संघीकृत राज्यों के प्रतिनिधियों द्वारा मामला उठाने पर रोक नहीं लगाता।

दूसरे, संघीकृत राज्यों के प्रतिनिधियों पर संघीय सरकार के आर्थिक प्रस्तावों पर बहस और मतदान करने पर कोई पाबंदी नहीं है। ऐसा कोई प्रस्ताव जो सिर्फ ब्रिटिश भारत को प्रभावित करता है और राज्यों को प्रभावित नहीं करता, उनके रास्ते में किसी प्रकार की कानूनी अड़चन पैदा नहीं करता।

तीसरे, कानून बनाने के मामले में संघीकृत राज्यों के प्रतिनिधियों को संघीय विधानमंडल के समक्ष लाए गए किसी भी मामले पर मतदान करने की स्वतंत्रता है। ऐसी दो सूचियां है, जिन पर संघ का विधायी प्राधिकार रहता है– संघीय सूची और समवर्ती सूची। प्रांतों को पूर्णरूपेण संघीय सूची से प्रतिबद्ध किया गया है। एक संघीकृत राज्य इससे पूरी तरह बंधा हुआ नहीं है। प्रांत समवर्ती सूची से पूरी तरह प्रतिबद्ध है। एक संघीकृत राज्य बिल्कुल भी प्रतिबद्ध नहीं है। फिर भी, राज्यों के प्रतिनिधियों को किसी भी मामले पर जो दोनों सूचियों में से किसी एक में आते हैं, मतदान करने का अधिकार प्राप्त है। दूसरे शब्दों में, संघीय योजना राज्यों को ब्रिटिश भारत के लिए विधि–निर्माण का अधिकार प्रदान करती है, जबकि ब्रिटिश भारत को राज्यों के संबंध में विधि–निर्माण का अधिकार नहीं है, सिवाय इस सीमा तक कि राज्य इन दो विधायी सूचियों के अधीन रहना पसंद करते हैं।

ब्रिटिश भारत के ऊपर राज्यों के विधायी प्रभाव का क्षेत्र किसी भी प्रकार कम अथवा व्यर्थ नहीं है। समवर्ती सूची तक सीमित रहने पर भी इसमें 36 विषय आते हैं। इन 36 विषयों में दंड विधि, आपराधिक एवं नागरिक दंड संहिता, पेशे, समाचार–पत्र, पुस्तकें और छपाईखाने आदि शामिल हैं। यह स्पष्ट है कि ये महत्वपूर्ण विषय हैं। इनसे प्रांतों में लोगों की स्वतंत्रता प्रभावित होती है। अब जैसे कि राज्यों को समवर्ती सूची के अंतर्गत सभी प्रकार के विधि–निर्माण में भाग लेने और मतदान का अधिकार प्राप्त है, देशी राज्यों को प्रांतों में ब्रिटिश भारतीयों के अधिकारों, विशेषाधिकारों और स्वतंत्रता को प्रभावित करने वाले विधि–निर्माण के सभी अधिकार और प्राधिकार प्राप्त हैं।

आगे विधायी क्षेत्र में, जहां तक कि इसका संबंध समवर्ती सूची से है, राज्यों ने बिना किसी अनुग्रह के प्राधिकार प्राप्त कर लिया है। उन्हें विधि–निर्माण की स्वतंत्रता है और उन्हें अपने विषय में विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जिन कानूनों को वे बनाते हैं, उनसे वे प्रतिबद्ध नहीं हैं। उनका आचरण उतना ही अनुत्तरदायी हो सकता है, जितना कि वे इसे बनाना चाहें।

यद्यपि यह कहना कम बयानी है कि राज्यों को ब्रिटिश भारत में केवल प्रशासन और विधि–निर्माण को प्रभावित करने का अधिकार प्राप्त है। सत्य यह है कि राज्य ब्रिटिश भारत पर अपना वर्चस्व बनाए रख सकते हैं, क्योंकि वे संघीय सरकार में एक मंत्रालय की सत्ता बरकरार रख सकते हैं, भले ही ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों के बहुमत में विशुद्ध रूप से भारत को प्रभावित करने वाले मामले में इसे पराजित कर दिया हो। यह इसलिए है कि उन्हें किसी प्रस्ताव पर, जिसमें अविश्वास प्रस्ताव भी सम्मिलित है, मतदान करने का अधिकार प्राप्त है, चाहे प्रस्ताव से संबंधित वह मामला उन्हें प्रभावित करता है अथवा नहीं। एक ओर जहां राज्य ब्रिटिश भारत के आंतरिक मामलों पर बहस में भाग ले सकते हैं, वहीं ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों को राज्यों के मामलों पर चर्चा करने का वैसा ही अधिकार प्राप्त नहीं है। इस अन्याय और विसंगति को दूर करने के लिए– ऐसे प्रश्नों पर जिनका ब्रिटिश भारत के आंतरिक मामलों से संबंध न हो– राज्यों के बहस और मतदान के अधिकार को सीमित करने की कोशिश की गई थी। लेकिन राजाओं और उनके प्रतिनिधियों ने सदैव इस तरह का अंतर किए जाने का विरोध किया और इस बात पर जोर दिया कि जिस मामले पर मंत्रालय का भाग्य आश्रित हो, उन्हें उस सरकार के भविष्य के बारे में निर्णय करने का अधिकार होना चाहिए। संविधान ने राजाओं के इस दृष्टिकोण को सही करार दिया और ब्रिटिश भारत के दृष्टिकोण को ठुकरा दिया।

यह तुलना दर्शाती है कि राज्यों को कानूनन ब्रिटिश भारत के मामलों पर नियंत्रण का अधिकार प्राप्त है और उसी कानून के जरिए ब्रिटिश भारत राज्यों के किसी भी प्रकार प्रभावित करने के मामले में पंगु है। इस सच्चाई को सभी को स्वीकार कर लेना चाहिए। दूसरे शब्दों में, संघीय योजना ब्रिटिश भारत की मदद नहीं करती, अपितु उसके मार्ग में बाधाएं उत्पन्न करती है, जिससे कि देशी राज्यों के प्रजातंत्रीकरण की प्रक्रिया में तेजी न आ सके। दूसरी ओर यह देशी राज्यों की ब्रिटिश भारत में प्रजातंत्र को कुचलने में मदद करती है।

संघ और उत्तरदायित्व

अब हम उत्तरदायित्व के प्रश्न पर विचार करेंगे। ब्रिटिश भारत के दृष्टिकोण से अन्य दो तर्कों के मुकाबले यह अधिक निर्णयात्मक महत्व का है और इसे सावधानी से जांचना–परखना चाहिए।

इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता कि संघ का कुछ सीमा तक उत्तरदायित्व है। प्रश्न यह है कि उत्तरदायित्व की सीमा कितनी है और इसके क्षेत्र में जो उत्तरदायित्व हैं, वे कितने वास्तविक हैं।

हम पूछते हैं कि इस संघ में कितना उत्तरदायित्व है? धारा 9 और 11 को साथ–साथ पढने से आप इस प्रश्न का उत्तर देने में सक्षम हो सकते हैं। दोनों को साथ–साथ पढ़ने से उस उत्तरदायित्व के संबंध में एक विचार आपको मिलेगा। इन दोनों धाराओं के अनुसार सरकारी प्राधिकार दो भागों में विभाजित है। पहले भाग में चार विषय आते हैं: (1) प्रतिरक्षा, (2) धर्म संबंध मामले, (3) विदेशी मामले, और (4) आदिवासी क्षेत्रों का प्रशासन। बाकी विषयों को जो संघ के कार्यकारी प्राधिकार के अंतर्गत आते हैं, अलग दूसरी सूची में रखा गया है। दोनों ही सूचियों का कार्यकारी प्राधिकार गवर्नर–जनरल में विहित है। लेकिन सरकारी प्राधिकार के मामले में उनमें एक अंतर रखा गया है। अधिनियम के अंतर्गत प्रथम सूची में आने वाले चार विषयों के संबंध में सरकारी प्राधिकार गवर्नर–जनरल के स्वविवेक पर आश्रित है। दूसरी सूची में जो शेष विषय आते हैं, उनका अधिनियम के अंतर्गत सरकारी प्राधिकार मंत्री की सलाह पर कार्यरत गवर्नर–जनरल पर छोड़ा गया है। प्रथम चार विषयों के मामले में सरकार विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं है, क्योंकि गवर्नर–जनरल जिसमें कि सरकारी प्राधिकार इन चार विषयों के बारे में विहित है, विधानमंडल द्वारा पदच्युत नहीं किया जा सकता। अन्य सभी मामलों में सरकार विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी हैं, क्योंकि जिन मंत्रियों की सलाह पर सरकारी प्राधिकार प्रयोक्तव्य है, उन्हें विधानमंडल द्वारा पदच्युत किया जा सकता है। इसलिए संघीय योजना में उत्तरदायित्व प्रतिरक्षा और विदेशी मामलों पर लागू नहीं होता, जो कि अंततः सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण विषय है। यह योजना द्वैध शासन से मिलती–जुलती है, जिसमें विषयों का विभाजन आरक्षित और हस्तांतरित विषयों के रूप में, मोंटेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधारों के आधार पर था, किया गया है जिसकी परिकल्पना भारत सरकार अधिनियम, 1919 के अंतर्गत प्रांतीय संविधान में की गई थी। 1935 के अधिनियम में संघीय संविधान में उत्तरदायित्व की योजना, 1919 के अधिनियम के अंतर्गत प्रांतीय संविधान की यथार्थ प्रति कृति है।

क्या यह उत्तरदायित्व वास्तविक है? मेरा उत्तर नकारात्मक है। इसके लिए मैं अपने कारण बताऊंगा। प्रथमतः, उत्तरदायित्व का क्षेत्र सीमित होने के साथ–साथ मंत्रियों द्वारा कार्यवाही करने का खुला क्षेत्र नहीं है। इस बात का अनुभव करने के लिए कि यह सीमित उत्तरदायित्व कितना बंधनयुक्त है, हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि मंत्रियों की शक्तियों पर जब वे अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हैं, कितने प्रतिबंध लगाए जाते हैं।

मंत्रियों के प्राधिकार पर लागू प्रतिबंधों की प्रथम श्रृंखला गवर्नर–जनरल के अपने विशेष उत्तरदायित्व का पालन करने से उत्पन्न होती है।

मंत्रियों के प्राधिकार पर लागू प्रतिबंधों की एक अन्य श्रृंखला है, जो हस्तांतरित विषयों के संबंध में सरकारी प्राधिकार के प्रयोग से उत्पन्न होती है। इसको समझने के लिए आपको संघीय संविधान के एक विशेष लक्षण को जानना पड़ेगा। संविधान सरकारी प्राधिकार के दृष्टिगत विषयों का वर्गीकरण करता है और इस वर्गीकरण के फलस्वरूप विषयों का ऐसा विभाजन हुआ है, जिन्हें संक्षिप्तता के लिए हस्तांतरित और आरक्षित नाम दिया जा सकता है। संविधान यही नहीं रूकता। यह आगे बढ़कर हस्तांतरित विषयों विषयों को दो श्रेणियों में विभाजन करता है – (1) वे विषय, जिन पर मंत्रियों का

सरकारी प्राधिकार अपने साथ प्रशासकीय नियंत्रण भी लाता है, और (2) वे विषय, जिन पर मंत्रियों का सरकारी प्राधिकार अपने साथ प्रशासकीय नियंत्रण नहीं लाता।

इस वर्गीकरण के उदाहरण के लिए रेलवे का मामला प्रस्तुत किया जा सकता है। रेलवे एक हस्तांतरित विषय है। मंत्रियों का सरकारी प्राधिकार रेलवे पर है। लेकिन मंत्रीगण रेलवे पर किसी भी प्रकार का प्रशासकीय नियंत्रण नहीं रख सकते। रेलवे पर प्रशासकीय नियंत्रण रेलवे प्राधिकरण का होता है। प्रशासकीय नियंत्रण सहित सरकारी प्राधिकार और बिना प्रशासकीय नियंत्रण के सरकारी प्राधिकार के मध्य जो भेद है, वह भेद बिना किसी भिन्नता के नहीं हैं। दूसरी ओर यह जो दोनों स्थितियों में भिन्नता है, वह वास्तविक है। धारा 181 की उपधारा (2) में रेलवे के मामले में यह भिन्नता स्पष्ट की गई है। यह भेद नीति निर्धारित करने वाले प्राधिकार और उसकी कार्य–क्षमता के बीच है। यह इस संघ की वकालत करने वालों को बताने के लिए है कि क्या सरकारी योजना में उत्तरदायित्व की वास्तविकता है, जब कि कार्य करने में सक्षमता तथा नीति–निर्धारण के प्राधिकार में संबंध–विच्छेदन हैं?

संघीय योजना में उत्तरदायित्व विषयक दो बातें स्पष्ट हैं। प्रथम यह कि उत्तरदायित्व की परिधि सीमित है। दूसरे, यह वास्तविक नहीं है, क्योंकि गवर्नर–जनरल के विशेष उत्तरदायित्वों के फलस्वरूप और साथ ही मंत्रियों के सरकारी प्राधिकार को, कुछ विषयों में सक्षमता से कार्य करने, जैसे कि रेलवे, यद्यपि वे हस्तांतरित विषय हैं, वापस ले लेने के कारण इसमें रूकावटें पैदा होती हैं।

मैं पहले कह चुका हूं कि संघीय योजना में उत्तरदायित्व की प्रणाली द्वैध शासन–प्रणाली से मेल खाती है, जिसे 1919 के अधिनियम के अंतर्गत प्रांतों में लागू किया गया था। लेकिन यद्यपि संघ में उत्तरदायित्व की योजना की द्वैध शासन–प्रणाली से तुलना करने पर जिसे प्रांतों में लागू किया गया था, यह बात पता चलती है कि दूसरे के मुकाबले पहली में उत्तरदायित्व पर कम जोर दिया गया था। प्रांतों के द्वैध शासन में वे दो बातें नहीं मिलती, जो संघीय योजना में मिलती हैं और द्वैध शासन में जो एक चीज मिलती है, वह संघ में अप्राप्य है। दो की उपस्थिति और एक की अनुपस्थिति इस संघ में द्वैध शासन को प्रांतों के द्वैध शासन ने भी और अधिक खराब बनाती है।

इस संघीय योजना में जो दो नई बातें हैं, उनमें एक है हस्तांतरित विषयों के बारे में गवर्नर–जनरल के विशेष उत्तरदायित्वों का सिद्धांत और दूसरी है सरकारी प्राधिकार का प्रशासकीय नियंत्रण से पृथक्करण, उन विषयों के संबंध में जो हस्तांतरित क्षेत्र में आते हैं। ये दोनों नई चीजें हैं, जो प्रांतों में द्वैध शासन तंत्र के संविधान में नहीं थीं।

यह कहा जा सकता है कि गवर्नर–जनरल का विशेष उत्तरदायित्व साधारणः निशेषाधिकार का दूसरा नाम है। यह वह शक्ति है, जिससे मंत्रियों के विरूद्ध व्यवस्था की जा सकती है और यहां तक कि ब्रिटिश संविधान में सम्राट को इस प्रकार का निषेधाधिकार प्राप्त है। इसके सम्मुख गवर्नर–जनरल के विशेष उत्तरदायित्वों का यह विचार सही लगता है। लेकिन वास्तव में जिन शर्तों और परिस्थितियों के अधीन सम्राट के निषेधाधिकार का प्रयोग किया जा सकता है, उनके बारेमें एक मिथ्या धारण है।

मेरी जानकारी में एक उत्तरदायी शासन व्यवस्था में सम्राट और उसके मंत्रियों के बीच संबंधों की मैकाले के अतिरिक्त किसी अन्य ने इतनी अच्छी व्याख्या नहीं की है। उनके शब्दों में :

इंग्लैंड में सम्राट अपने निषेधाधिकार का प्रयोग नहीं कर सकता, जब तक कि कोई मंत्री सम्राट की कार्यवाही का उत्तरदायित्व ओढ़ने के लिए तैयार नहीं है। अगर कोई मंत्री उत्तरदायित्व निभाने के लिए तैयार नहीं है, तो सम्राट को समर्पण, संघर्ष अथवा पद त्याग देना चाहिए। गवर्नर–जनरल की स्थिति भिन्न है। उसे समर्पण करने की आवश्यकता नहीं। कोई मंत्री अगर उसकी कार्यवाही का उत्तरदायित्व उठाने को तैयार नहीं है, तो भी वह कार्यवाही कर सकता है। सम्राट के निषेधाधिकार और गवर्नर–जनरल के निषेधाधिकार में यही अंतर है। ध्यान देने योग्य विशेष महत्व की बात यह है कि हस्तांतरित क्षेत्र के लिए ही इस निषेधाधिकार का अस्तित्व है। प्रांतों के द्वैध संविधान में हस्तांतरित क्षेत्र गवर्नर के निषेधाधिकार का विषय नहीं था। दूसरे शब्दों में, गवर्नर के कोई विशेष उत्तरदायित्व नहीं थे। यदि गवर्नर–जनरल हस्तांतरित क्षेत्र में मंत्रियों के विरूद्ध व्यवस्था देता है, तो प्रश्न उठता है कि मंत्रियों के उत्तरदायित्व में क्या सार है। मुझे यह बहुत कम दिखाई पड़ता है।

दूसरी बात जो नई है, वह है सरकारी प्राधिकार और प्रशासकीय नियंत्रण के मध्य पृथक्करण। प्रांतों में द्वैध संविधान में इस प्रकार का प्रावधान नहीं था। प्रातों के द्वैध संविधान में जब किसी विषय का हस्तांतरण होता था तो सरकारी प्राधिकार और साथ ही प्रशासकीय नियंत्रण, दोनों ही मंत्री को हस्तांतरित होते थे। आप स्वयं अपने से प्रश्न करेंगे कि मंत्रीय उत्तरदायित्व में क्या सार है, अगर एक मंत्री मात्र निर्देश जारी कर सकता है और इसके अंतर्गत कार्यवाही का नियंत्रण नहीं कर सकता? मुझे यह बहुत कम दिखाई पड़ता है।

प्रांतों के द्वैध शासन के संविधान में जो प्रावधान था और जिसे संघीय संविधान में हटा दिया गया है, उसका संबंध आरक्षित विषयों के लिए वित्त–प्रबंध से है। सन् 1919 के पुराने अधिनियम की धारा 72 डी और वर्तमान अधिनियम की धारा 33 और 34 की इस संबंध में उपयोगिता–पूर्ण तुलना की जा सकती है। धारा 72 डी की उपधारा (2) के अनुसार :

वार्षिक व्यय के प्राक्कलनों और प्रांतीय राजस्व को एक विवरण के रूप में प्रत्येक वर्ष काउंसिल के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा और किसी भी वर्ष में स्थानीय शासन के प्रस्तावों को प्रांतीय राजस्व और अन्य धनराशियों के विनियोजन हेतु अनुदान मांगो के रूप में काउंसिल में मतदान हेतु प्रस्तुत किया जाएगा। काउंसिल चाहे तो मांग पर स्वीकृति दे सकती है अथवा स्वीकृति देने से मना कर सकती है और इसमें उल्लिखित धनराशि को मदों में कमी करके घटा सकती है, जिसके लिए अनुदान लेखे बनाए गए हैं।

वर्तमान 1935 के अधिनियम की धारा 34 से तुलना करें। धारा 34 की उपधारा (1) के अनुसार :

व्यय के उन प्राक्कलनों को जिनका संबंध संघ के राजस्व स्त्रोंतों पर भारित है, विधानमंडल में मतदान हेतु प्रस्तुत नहीं किया जाएगा, लेकिन इस उपधारा से यह नहीं समझा जाना चाहिए कि धारा 33 की उपधारा (2) के पैरा (क) अथवा पैरा (च) में उल्लिखित व्यय से संबंधित प्राक्कलनों के सिवाय, इनमें से किन्हीं प्राक्कलनों पर विधानमंडल के किसी भी सदन में चर्चा रोकी जा सकती है।

धारा 33 के अनुसार संघ के राजस्व पर भारित व्यय में आरक्षित विषयों पर होने वाले व्यय सम्मिलित हैं। दोनों अधिनियमों के प्रावधानों की तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराने अधिनियम में धारा 72 डी के द्वारा हस्तांतरित और आरक्षित विषयों में कोई भेद नहीं किया गया था। जहां तक विधानमंडल की प्रदाय स्वीकृति की शक्तियों का प्रश्न है, आरक्षित विषयों पर व्यय विषयक विधानमंडल में न सिर्फ बहस हो सकती थी, वरन उस पर मतदान भी हो सकता था। नए अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत जो प्रावधान है, उसके अनुसार संघीय विधानमंडल आरक्षित विषयों के व्यय पर बहस तो कर सकता है, लेकिन मतदान नहीं कर सकता है। यह एक महत्वपूर्ण अंतर है। पुराने संविधान के अंतर्गत आरक्षित विषय भी विधानमंडल की वित्तीय शक्तियों के अंतर्गत आते थे। वर्तमान संविधान के अंतर्गत वे संघीय विधानमंडल की वित्तीय शक्तियों से स्वतंत्र है। यह सही है कि प्रांतीय संविधान में आरक्षित विषयों पर व्यय की मदों पर विधानमंडल में मतदान अंतिम नहीं होता था। धारा 72 डी के उपबंध के अधीन गवर्नर को प्रदत्त शक्तियों में यह प्रावधान था कि 'ऐसी किसी मांग के बारे में ऐसे कार्य करना जैसे कि उस पर सहमति प्राप्त हो गई है, किसी भी बात के होते हुए इस प्रकार की सहमति को रोकने अथवा विधानमंडल द्वारा धनराशि में कटौती किए जाने पर भी यदि मांग आरक्षित विषयों से संबंधित है और गवर्नर यह प्रमाणित करता है कि मांग में रखा गया व्यय उस विषय से संबंधित उसके उत्तरदायित्व के निर्वाह में आवश्यक है।' यह भी सच है कि 1935 के अधिनियम में आरक्षित विषयों पर व्यय की धनराशि 42 करोड़ रुपये सुरक्षित कर दी गई थी। लेकिन पुराने संविधान में आरक्षित विषयों के बारे में वैसा ही अंतर विद्यमान रहता है जो कि तब विधानमंडल के वित्तीय नियंत्रण के अधीन थे, जबकि नए संविधान में ऐसा नहीं है। यह अंतर कोई मामूली अंतर नहीं है। प्रदायों की स्वीकृति कार्यपालिका के उत्तरदायित्व को लागू करने की प्रभावी विधि है। शायद प्रमाणीकरण की शक्ति ने विधानमंडल को आरक्षित विषयों पर नियंत्रण से वंचित कर दिया था। लेकिन इसने इसके प्रभाव को पूर्णतया नष्ट नहीं किया था। वर्तमान संविधान के अंतर्गत विधानमंडल का आरक्षित विषयों पर न तो कोई नियंत्रण है और न ही इसका उनके ऊपर कोई प्रभाव है। तब इस बात में शक की कोई गुंजाइश नहीं है कि इस संघीय द्वैध शासन प्रणाली के मुकाबले पुराने प्रांतीय संविधान में द्वैध शासन प्रणाली में अधिक उत्तरदायित्व था।

यह तथ्य कि कार्यपालिका विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी नहीं है, साधारणः यह सिद्ध करता है कि संघीय योजना में कार्यपालिका सर्वोच्च है। कार्यपालिका की सर्वोच्चता कई प्रकार से कायम रखी जा सकती है। विधानमंडल का गठन इस प्रकार किया जाए कि विधानमंडल सदैव कार्यपालिका के आदेशाधीन रहे।

संघीय योजना में इन दोनों साधनों को चुना गया है। प्रथम स्थान पर यह संघीय विधानमंडल की शक्तियों को सीमित करता है। मैं पहले ही बता चुका हूं कि संघीय योजना में संघीय विधानमंडल की वित्तीय शक्तियों को किस तरह काफी कम कर दिया गया है। संघीय विधानमंडल को किसी भी मद पर होने वाले ऐसे व्यय को मना करने की शक्ति नहीं है, जिसे राजस्व में घोषित किया गया है।

संघीय योजना संघीय विधानमंडल की विधायी शक्तियों को भी कम करती है। धारा 108 में इन प्रतिबंधों का उल्लेख निम्न प्रकार है :

(1) जब तक कि गवर्नर–जनरल स्वविवेक से अपनी पूर्व स्वीकृति देना उचित नहीं समझता, तब तक संघीय विधानमंडल के किसी भी सदन में ऐसा कोई विधेयक या संशोधन पुनःस्थापित अथवा प्रस्तुत नहीं किया जाएगा, जो कि–

(क) ब्रिटिश भारत पर लागू संसद के किसी अधिनियम के किसी भी उपबंध को निरस्त करता है, संशोधित करता है, अथवा उसके प्रतिकूल है, अथवा

(ख) गवर्नर–जनरल अथवा गवर्नर के किसी भी अधिनियम अथवा स्वविवेक से गवर्नर–जनरल अथवा गवर्नर द्वारा जारी किए गए किसी अध्यादेश को निरस्त करता है, संशोधित करता है, अथवा उसके प्रतिकूल है, अथवा

(ग) ऐसे मामलों को प्रभावित करता है, जिन्हें गवर्नर–जनरल इस अधिनियम के द्वारा अथवा अंतर्गत स्वविवेक से कार्यवाही करने के लिए बाध्य है, अथवा

(घ) ऐसे किसी अधिनियम को जो पुलिस बल से संबंधित है, निरस्त करता है, संशोधित करता है, अथवा प्रभावित करता है, अथवा

(च) यूरोपीय ब्रिटिश प्रजाजनों के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाहियों की प्रक्रिया को प्रभावित करता है, अथवा

(छ) ब्रिटिश भारत के गैर–निवासियों पर ब्रिटिश भारत के निवासियों के मुकाबले अधिक कराधान करता है, अथवा ब्रिटिश भारत में ऐसी कंपनियों पर जो पूर्णतया नियंत्रित और प्रबंधित है, अधिक कराधान करता है, अथवा

(ज) किसी भी आय पर जिस पर कि ब्रिटेन में आयकर लग चुका है या लग सकता है, संघीय कर से

छूट को प्रभावित करता है।

(2) जब तक कि गवर्नर–जनरल स्वविवेक से अपनी स्वीकृति देना उचित नहीं समझता, तब तक प्रांतीय विधानमंडल के किसी भी सदन में कोई ऐसा विधेयक पुनः स्थापित अथवा प्रस्तुत नहीं किया जाएगा, जो कि –

(क) ब्रिटिश भारत पर लागू संसद के किसी अधिनियम के किसी भी उपबंध को निरस्त करता है, संशोधित करता है, अथवा उसके प्रतिकूल है, अथवा

(ख) गवर्नर–जनरल के किसी भी अधिनियम अथवा स्वविवेक से गवर्नर–जनरल द्वारा जारी किए गए किसी अध्यादेश को निरस्त करता है, संशोधित करता है, अथवा उसके प्रतिकूल है, अथवा

(ग) ऐसे मामलों को प्रभावित करता है, जिन्हें गवर्नर–जनरल इस अधिनियम के द्वारा अथवा अंतर्गत स्वविवेक से कार्यवाही करने के लिए बाध्य है, अथवा

(घ) यूरोपीय ब्रिटिश प्रजाजनों के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाहियों की प्रक्रिया को प्रभावित करता है।

और जब तक कि प्रांत का गवर्नर स्वविवेक से अपनी पूर्व स्वीकृति देना उचित नहीं समझता तब तक ऐसा कोई विधेयक या संशोधन न तो पुनः स्थापित किया जाएगा, न ही प्रस्तुत किया जाएगा, जो कि –

(क) गवर्नर के किसी अधिनियम अथवा गवर्नर द्वारा स्वविवेक से जारी किए गए किसी अध्यादेश को निरस्त करता है, संशोधित करता है, अथवा उसके प्रतिकूल है, अथवा

(ख) किसी अधिनियम को जिसका संबंध किसी पुसिल बल से है, निरस्त करता है, संशोधित करता है, अथवा प्रभावित करता है।

(3) इस धारा के अंतर्गत कोई चीज इस अधिनियम के किसी भी ऐसे प्रावधान की कार्यवाही को प्रभावित नहीं करती, जिसमें किसी विधेयक के पुनः स्थापना अथवा संशोधन प्रस्तुत करने के लिए गवर्नर–जनरल अथवा गवर्नर की पूर्व स्वीकृति आवश्यक होती है।

कार्यपालिका की सर्वोच्चता कायम रखने के लिए संघीय योजना मात्र संघीय विधानमंडल की शक्तियों को कम करने तक नहीं रुकती। इसके अंतर्गत संघीय विधानमंडल का गठन इस प्रकार किया जाता है कि विधानमंडल सदैव कार्यपालिका के आदेशाधीन रहेगा। इस संबंध में संघीय विधानमंडल के गठन की वास्तविकता क्या है, इसे ध्यान में रखना आवश्यक है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि विधानमंडल के 375 सदस्य है, इनमें से 125 देशी राज्यों के और 250 ब्रिटिश भारत के हैं। राज्य परिषद में योग 260 है और उसमें 104 राज्यों को और 156 ब्रिटिश भारत को आबंटित हैं। राज्यों को जो सीटें मिली हुई हैं, वे राजाओं द्वारा नामनिर्देशन से भरी जाएंगी। जो सीटें ब्रिटिश भारत के लिए नियत हैं, वे चुनाव द्वारा भरी जानी है। इसलिए संघीय विधानमंडल एक विजातीय विधानमंडल है, जिसका गठन आंशिक रूप से चुनाव द्वारा और आंशिक रूप से नामनिर्देशन द्वारा किया जाता है।

पहला विचारणीय प्रश्न यह है कि राजाओं के प्रतिनिधि संघीय विधानमंडल में किस प्रकार का व्यवहार करेंगे। क्या वे संघी कार्यपालिका से स्वतंत्र होंगे अथवा इसके अधीनस्थ होंगे? इसके बारे में भविष्यवाणी करना कठिन है। लेकिन कुछ विशेष प्रभावों को जो नामांकन के दौरान अपनी भूमिका अदा करते है, ध्यान में रखना होगा। यह एक अविवादास्पद तथ्य है कि ब्रिटिश सरकार दावा करती है कि राज्यों के ऊपर उसकी प्रभुसत्ता का अधिकार है। प्रभुसत्ता एक बहु–प्रयोजनीय शब्द है, जो इन अधिकारों का बोध कराता है, जिनका प्रयोग सम्राट भारत सरकार के राजनीतिक विभाग द्वारा राज्यों के ऊपर कर सकता है। राजनीतिक विभाग इन अधिकारों में से जिस अधिकार के प्रयोग का दावा करता है, वह है भारतीय राजाओं को विशेष नियुक्तियों के संबंध में परामर्श देना। यह सुविदित है कि जिसे परामर्श कहते हैं, वह कूटनीतिक शब्दावली में आदेश है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि राजनीतिक विभाग राजाओं द्वारा इन रिक्तियों को भरने के लिए सलाह देने के अधिकार का दावा करेगा। अगर ऐसा हो जाए तो इसके परिणाम क्या होंगे? इसका नतीजा यह होगा कि राजाओं के प्रतिनिधिगण दूसरे अर्थ में एक ऐसे सरकारी समूह का रूप धारण करेंगे, जिसकी निष्ठा न जनता के प्रति, न राजाओं के प्रति, वरन् भारत सरकार के राजनीतिक विभाग के प्रति होगी। आगे दो बातों पर और ध्यान देना चाहिए। प्रथम यह कि प्रभुसत्ता संघीय सरकार से परे है। इसका अर्थ है कि मंत्रियों को राज्यों के प्रतिनिधियों के नामनिर्देशन के विषय में सलाह देने का अधिकार नहीं होगा और विधानमंडल इसकी आलोचना नहीं करेगा। गवर्नर–जनरल से थोड़ा भिन्न वे वायसराय के नियंत्रण के अंतर्गत होंगे। दूसरे, राजाओं का यह आधिकारिक समूह कोई छोटा समूह नहीं। निचले सदन में जो दल 187 सीटें रखता है, वह बहुमत का दावा कर सकता है। उच्च सदन में एक दल जिसके पास 130 सीटे हैं, बहुमत का दावा कर सकता है। निचले सदन में राजाओं को 125 सीटें मिली हुई है। उन्हें बहुमत जताने के लिए 62 सदस्यों का एक दल चाहिए। उच्च सदन में उनके 104 सदस्य हैं, उन्हें 26 की आवश्यकता है। कार्यपालिका के पास इतनी भारी शक्ति होती है। तब ऐसी विधायिका कैसे स्वतंत्र होगी? अपने पास इतनी शक्ति रखते हुए सुरक्षित अर्द्धभाग हस्तांतरित अर्द्धभाग पर नियंत्रण कर सकता है।

ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों का व्यवहार कैसा होगा? मैं कोई सकारात्मक विवरण पेश नहीं कर सकता। लेकिन मैं इसे ध्यान में रखना ठीक समझता हूं कि कुछ राज्यों में नियमित बजट नामक कोई चीज नहीं है और न वहां स्वतंत्र लेखा–परीक्षा का प्रावधान है। राजाओं को ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों का समर्थन खरीदने में कोई कठिनाई नहीं होगी। राजनीति एक गंदा खेल है और ब्रिटिश भारत के राजनीतिज्ञों के बारे में कहना कठिन होगा कि वे भ्रष्टाचार से मुक्त है और जबकि गुप्त रूप से खरीदरी की जा सकती है तो यह खतरा वास्तविक है।

संघीय योजना को जिस प्रकार भी देखना चाहें, देखें और उत्तरदायित्व विषयक प्रावधानों का जैसा भी चाहें विश्लेषण करें, लेकिन आप पाएंगे कि वास्तविक उत्तरदायित्व जैसा कुछ नहीं है।

7
संघीय योजना के दोष

ऐसा कोई नहीं है, जो यह स्वीकार न करे कि यह योजना एक अखिल भारतीय संघ के लिए दोषपूर्ण है। मतांतर तभी होता है, जब यह प्रश्न पूछा जाए कि हम इसके बारे में क्या करें। समय–समय पर प्रमुख भारतवासियों ने इस प्रश्न के जो उत्तर दिए है, उनसे ज्ञात होता है कि मोटे तौर पर इस संघ के विषय में दो काफी भिन्न रवैए हैं। एक उनका रुख है जो यह सोचते हैं कि यह बुरा तो है ही, हमें इस संघ को स्वीकार कर लेना चाहिए और इसकी जो अच्छाइयां हैं, उन्हें काम करके हासिल कर लेना चाहिए। दूसरी ओर, कुछ ऐसे रूख वाले भी हैं, जो सोचते हैं कि इससे पूर्व कि संघ के संविधान को स्वीकृत करके काम शुरू किया जाए, इसमें खास परिवर्तन होने चाहिए। ऐसा ज्ञात हुआ है कि कांग्रेस और साथ ही नरम दल, दोनों ही इस प्रश्न पर एक हैं। दोनों ने यह घोषित कर दिया है कि इससे पूर्व कि वे इस संघ को कार्य करने के लिए स्वीकृत करें, इसमें कुछ विशेष परिवर्तन होने चाहिएं।

यह संघ भारत के अधिकांश लोगों को स्वीकार नहीं है, यह प्रश्न से परे है। प्रश्न यह है कि किस तरह हम संविधान में संशोधन करना चाहेंगे? हमें किन परिवर्तनों की मांग करनी है? इस प्रश्न के विषय में कांग्रेस और नरम दल ने जो प्रस्ताव पारित किए हैं, वहीं से हमें शुरुआत करनी है।

कांग्रेस ने 1938 में हरिपुरा में आयोजित अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया, जो इस प्रकार है :

कांग्रेस ने नवीन संविधान को रद्द कर दिया है और यह घोषणा की है कि भारत का संविधान, जिसे लोग स्वीकार कर सकते है, स्वतंत्रता पर आधारित होना चाहिए और यह संविधान सभा द्वारा लोग स्वयं ही तैयार कर सकते हैं, जिसमें कोई विदेशी प्राधिकरण हस्तक्षेप नहीं करेगा। कांग्रेस ने संविधान को रद्द करने की इस नीति का अनुसरण करते हुए भी प्रांतों में कांग्रेस मंत्रिमंडलों के गठन की अनुमति दे दी है, जिसका उद्देश्य यह है कि देश में स्वतंत्रता संग्राम को सशक्त बनाया जाए। प्रस्तावित संघ के संबंध में इस प्रकार के विचार अस्थायी रूप से अथवा सीमित समय के लिए लागू नहीं होते तथा इस संघ के आरोपण से भारत को भारी क्षति पहुंचेगी और ये बंधन अधिक कड़े हो जाएंगे, जो साम्राज्यवादी शासन के अधीन देश को जकड़े हुए हैं। संघ की यह योजना सरकार के उत्तरदायी महत्वपूर्ण कार्यों के क्षेत्र से अलग है।

कांग्रेस संघ के विचार के विरुद्ध नहीं है, परंतु वास्तविक संघ ऐसा होना चाहिए जिसमें दायित्व के प्रश्न से भी अलग ऐसी स्वतंत्र इकाइयों का समावेश हो, जो न्यूनाधिक मात्रा में समान रूप से स्वाधीनता तथा नागरिक स्वतंत्रता और चुनाव की लोकतांत्रिक प्रक्रिया द्वारा प्रतिनिधित्व का लाभ उठा सकें। संघ में सहभागी होने वाले देशी राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्थाओं तथा जिम्मेदार सरकार की स्थापना, नागरिक स्वतंत्रा और संघीय सदनों के चुनाव के तरीके प्रांतों के अनुरूप होने चाहिएं। अन्यथा संघ, जैसा कि आज विचार किया गया है, भारत की एकता के निर्माण की बजाए अलगाववादी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देगा तथा राज्यों में आंतरिक और बाह्य्य संघर्ष होने लगेंगे।

इसलिए कांग्रेस प्रस्तावित संघीय योजना की भर्त्सना की पुनः पुष्टि करती है तथा प्रांतीय और स्थानीय कांग्रेस समितियों और सामान्य रूप से लोगों एवं प्रांतीय सरकारों और मंत्रिमंडलों से अनुरोध करती है कि इस योजना को शुरू न करे। यदि लोगों की स्पष्ट इच्छा के बावजूद इस योजना को लागू किया जाता है तो इसका हर प्रकार से विरोध किया जाना चाहिए और प्रांतीय सरकारों को इसमें सहयोग करने से इंकार कर देना चाहिए। यदि इस प्रकार की कोई भी आकस्मिकता उत्पन्न हो जाए, तो अखिल भारतीय कांग्रेस समिति को यह अधिकार है कि वह इस संबंध में अपनाई जाने वाली कार्य की दिशा का निर्धारण करें। बंबई में आयोजित अपने गत अधिवेशन के समय उदारवादी संघ द्वारा पारित प्रस्ताव इस प्रकार है :

राष्ट्रीय उदारवादी संघ अपना मत पुनः दोहराता है कि संविधान, विशेष रूप से भारत सरकार अधिनियम, 1935 में दिए गए केन्द्र के संबंध में नितांत असंतोषजनक है और अनेक दृष्टिकोणों से प्रगतिशील नहीं है। राष्ट्रीय उदारवादी संघ यह मानता है कि केवल संघीय प्रकार की सरकार ही हमारे देश के लिए नैसर्गिक आदर्श सरकार है, जबकि संघ का विचार है कि संघ के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण परिवर्तनों की आवश्यकता होती है, जैसा कि अधिनियम में दिया गया है, विशेष रूप से इनके संबंध में : (क) राजाओं की स्थिति को स्पष्ट करना तथा राज्यों की जनता को राज्यों के प्रतिनिधियों के चुनाव के अधिकार को दिलाना, (ख) आर्थिक नीति और वाणिज्यिक विभेद संबंधी सुरक्षोपायों को समाप्त करना, (ग) प्रांतों द्वारा संघीय सभा के सदस्यों के लिए सीधी चुनाव पद्धति को लागू करना, और (घ) संविधान को पर्याप्त रूप से लचीला बनाना, ताकि भारत को उचित समयावधि में औपनिवेशिक राज्य का दर्जा प्राप्त हो सके।

राष्ट्रीय उदारवादी संघ का विचार है कि वर्तमान स्थिति ऐसी है कि केन्द्र में गैर–जिम्मेदार सरकार है और उसके साथ प्रांतों में जिम्मेदार सरकारें हैं। इस स्थिति का समर्थन नहीं किया जा सकता और संसद से अनुरोध किया जाता है कि वह संविधान में संघ से संबंधित भाग में तत्काल परिवर्तन करे, ताकि उसे सामान्य रूप से स्वीकार्य किया जा सके।

संघ का यह भी मत है कि ये संशोधन के सफल कार्यकरण के लिए परमावश्यक हैं।

क्या कांग्रेस अथवा उदारवादी संघ द्वारा जिन परिवर्तनों की मांग गई है, वे संघ की रद्द करने की वर्तमान प्रवृत्ति को संघ की स्वीकृति में बदलने के लिए पर्याप्त होंगे? जहां तक मेरा विचार है, मुझे यह बताने में कोई

झिझक नहीं है कि इन प्रस्तावों में जिन परिवर्तनों की मांग की गई है, यदि उन्हें स्वीकार कर भी लिया जाए तो भी मेरे विचार में अंतर नहीं आएगा। मेरे विचार से क्या ब्रिटिश संसद संघीय योजना के किसी भी विवरण को शीघ्र ही बदलने के लिए तैयार है– यह एक अत्यंत महत्वहीन विचार है। मैं इस मामले में ऐसा विचार रखता हूं कि संघीय योजना के प्रति की गई आपत्तियां किंचित भी न हटाई जाएंगी, भले ही ब्रिटिश संसद इन प्रस्तावों में पारित की गई मांगो में से प्रत्येक मांग को स्वीकार करने के लिए तैयार हो जाए। मेरे विचार में मूल प्रश्न यह है कि क्या इस संघीय योजना में इतनी क्षमता है कि इस बात का सूत्रपात हो सके कि भारत अंत में अपने उद्देश्य की पूर्ति कर लेगा और इसी दृष्टि से मैं संघीय योजना में रुचि रखने वाले सभी लोगों का संघीय योजना की जांच के लिए आह्वान करता हूं।

भारत के राजनीतिक विकास का लक्ष्य क्या है? यह स्थायी और स्पष्ट प्रतीत नहीं होता। भारत के लोगों की राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं को अभिव्यक्त करने का दावा करने वाली कांग्रेस का लक्ष्य अच्छी सरकार और फिर उत्तरदायी सरकार के स्थान पर देश को औपनिवेशक राज्य का दर्जा दिए जाने तथा अंततः स्वतंत्रता की मांग की। ऐसी स्थिति में कांग्रेस आत्म–निरीक्षण करने के लिए कुछ समय के लिए रुकी। इसके बाद डांवाडोल की स्थिति रही। अब यह फिर से औपनिवेशिक राज्य की मांग कर रही है और यह हमारी भूल नहीं होगी यदि कांग्रेस के अनुसार हम इस मांग को भाग के लक्ष्य के रूप में स्वीकार करें। अब प्रश्न यह है कि क्या संघीय योजना निश्चित समय में औपनिवेशिक राज्य के रूप में स्फुटित हो सकती है?

अनेक भारतीयों का यह विचार है कि औपनिवेशिक राज्य का प्रश्न एक ऐसा उपहार है, जो ब्रिटिश संसद के हाथों में है। यदि ब्रिटिश संसद इसे स्वीकृत करने का इरादा कर ले तो इसके मार्ग में कोई बाधा उपस्थित नहीं होगी।

भारतीयों की यह धारणा है कि यदि भारत को औपनिवेशक राज्य का दर्जा प्राप्त होने की कोई आशा नहीं है तो इसका कारण यह है कि ब्रिटिश संसद ने इसे देने से इंकार कर दिया है। उन्होंने अपनी धारणा के समर्थन में यह संदर्भ दिया है कि ब्रिटिश संसद ने भारत के लक्ष्य के रूप में औपनिवेशिक राज्य घोषित करने के लिए 1935 के अधिनियम मे एक प्रस्तावना जोड़ने से इंकार कर दिया है।

यह स्वीकार किया जाना चाहिए कि इस प्रकार की प्रस्तावना की मांग सर्वथा उचित थी। 1929 में ब्रिटिश संसद के सभी राजनीतिक दलों की सहमति से लॉर्ड इर्विन ने यह घोषणा की थी कि भारत के राजनीतिक विकास का लक्ष्य औपनिवेशिक राज्य स्थापित करना है। इसलिए भारतीय कोई नई मांग प्रस्तुत नहीं कर रहे हैं। इसके बारे में गवर्नर–जनरल और वायसराय आधिकारिक रूप से अपने विचार व्यक्त कर चुके हैं, परंतु ब्रिटिश सरकार ने उक्त प्रस्तावना को स्थान देने से इंकार कर दिया। इंकार करना ब्रिटिश सरकार का एक विचित्र व्यवहार था, परंतु इंकार करने के समर्थन में जो दलीलें दी गई हैं, वे और भी आश्चर्यजनक हैं। ब्रिटिश सरकार ने प्रस्तावना के सम्मिलित न किए जाने के अपने व्यवहार को न्यायसंगत ठहराने के लिए विविध प्रकार की शर्तें और दलीलें प्रस्तुत कीं।

पहला आधार यह था कि यह प्रस्तावना निरर्थक थी और इसकी कोई भी प्रचलन शक्ति नहीं थी। परंतु इस प्रकार की दलील का सरलता से निराकरण किया जा सकता था। संसद के सभी अधिनियमों में प्रस्तावनाएं हैं, जिनमें संसद के उद्देश्य और इरादे को अभिव्यक्त किया गया है। यह कहना सत्य है कि इसमें कोई वैधिक प्रभाव नहीं होता है, परंतु इसके साथ ही अदालतों में यह निर्णय नहीं दिया गया कि प्रस्तावना निरर्थक हैं। दूसरी ओर, जहां कहीं भी किसी धारा को व्यक्त करने में कोई संदेह होता है, अदालते सदैव प्रस्तावना का सहारा लेती है, ताकि अधिनियम के उद्देश्य को समझा जाए और किसी भी संदेहास्पद वाक्य–रचना के समाधान के लिए इसका उपयोग किया जाए। ऐसी स्थिति में ब्रिटिश सरकार ने दूसरा मापदंड अपनाया और 1919 के अधिनियम को निरस्त कर दिया, परंतु उस अधिनियम की प्रस्तावना को बनाए रखा। यह बात अत्यंत अजीब है। सर्वप्रथम यदि प्रस्तावना व्यर्थ है, तो 1919 के अधिनियम के एक भाग के रूप में अधिनियमित प्रस्तावना को सुरक्षित रखने की कोई आवश्यकता नहीं है। दूसरे, यदि 1919 के अधिनियम की प्रस्तावना आवश्यक थी तो इसे 1935 के अधिनियम के एक भाग के रूप में नए तरीके से अधिनियमित कर देना चाहिए था, जिसे ब्रिटिश सरकार नहीं करेगी। इसकी बजाए उसने इस बात को वरीयता दी कि सिर को धड़ से अलग करके विचित्र दृश्य प्रस्तुत किया जाए। अब इसका सिर 1919 के निरस्त अधिनियम और धड़ 1935 के वर्तमान अधिनियम के रूप में है। तीसरे, भारतीय लोग एक ऐसी प्रस्तावना चाहते थे, जिससे औपनिवेशिक राज्य परिलक्षित हो, जैसा कि लॉर्ड इर्विन के घोषणा–पत्र में इसका उल्लेख किया गया है। 1919 के अधिनियम की प्रस्तावना सिर्फ उत्तरदायी सरकार की बात कहती है। इसमें औपनिवेशिक राज्य की कोई बात नहीं कहीं गई है और 1919 के अधिनियम में प्रस्तावना को बनाए रखने का अर्थ यह था कि जहां तक संभव हो, इस मूर्खतापूर्ण कार्य के बारे में कम से कम कहा जाए।

ब्रिटिश संसद ने लक्ष्य रूप में औपनिवेशिक राज्य को परिभाषित करने वाली प्रस्तावना को अधिनियमित करने से क्यों इंकार कर दिया? ब्रिटिश संसद मांग को स्वीकृति प्रदान करने की बजाए इधर–उधर क्यों देखती रही? इस संबंध में आमतौर पर यही स्पष्टीकरण दिया जाता है कि यह एलबियोन (इंग्लैंड) का विश्वासघात है। मेरा अपना विचार इससे नितांत भिन्न है। ब्रिटिश संसद ने प्रस्तावना के अधिनियमन द्वारा औपनिवेशिक राज्य का वचन इसलिए नहीं दिया क्योंकि उसने यह अनुभव किया कि इस वचन का पालन कर पाना उसकी शक्ति से परे हैं। ब्रिटिश संसद में ईमानदारी का अभाव नहीं था। वास्तव में यह उसकी ईमानदारी थी, जिसके कारण ऐसी प्रस्तावना को अधिनियमित करने से उसने इंकार कर दिया, क्योंकि उसे यह पता था कि वह इस प्रकार की प्रस्तावना को लागू नहीं कर सकेगी। उसमें साहस का अभाव था कि भारतीयों को यह बता सके कि संघीय योजना में औपनिवेशिक राज्य के लिए कोई स्थान हीं है।

संघीय योजना के अंतर्गत औपनिवेशिक राज्य क्यों संभव नहीं है? यह इसलिए संभव नहीं है, क्योंकि उत्तरदायी सरकार प्राप्त करना संभव नहीं है। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि इस प्रकार का औपनिवेशिक दर्जा प्राप्त करने के लिए भारत को सर्वप्रथम उत्तरदायी सरकार प्राप्त करनी होगी। एक उत्तरदायी सरकार प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि आरक्षित विषयों को हस्तांतरित वर्ग में कर दिया जाए। यह औपनिवेशिक राज्य के विकास की प्रक्रिया की प्रथम अवस्था है।

आपमें से कुछ इन कारणों को जानना चाहेंगे कि मैं यह क्यों कहता हूं कि आरक्षित विषय हस्तांतरित विषय नहीं बन सकते। उन्हें अवश्य याद होगा कि प्रांतीय योजना में वे आरक्षित विषय थे, जैसा कि वे संघीय योजना में हैं और वे यह जानना चाहेंगे कि यदि आरक्षित विषय 20 वर्ष के अंतराल में हस्तांतरित विषय हो गए हैं, तो ऐसी क्या कठिनाई हो सकती है कि इस प्रकार की बातें संघीय पद्धति में न हों। चूंकि यह प्रश्न महत्वपूर्ण है, अतः मैं इस संबंध में अपने तर्क देता हूं। सर्वप्रथम, प्रांतों का सादृश्य (समानता) सही नहीं है। इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि यह समानता ठीक क्यों नहीं है? यह इसलिए ठीक नहीं है कि प्रांतीय योजना में आरक्षित और हस्तांतरित विषयों के बीच भेद प्रशासकीय क्षमता की आवश्यकताओं पर आधारित था। आरक्षित और हस्तांतरित विषयों के बीच भेद संघीय योजना में विधिसम्मत आवश्यकता पर आधारित होता है, प्रशासकीय क्षमता पर आधारित नहीं होता तथा इसके लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। साइमन कमीशन ने केन्द्र में द्वैध शासन की सिफारिश क्यों नहीं की, उसका एक कारण यह है, क्योंकि उसने महसूस किया कि सभी विभागों की दक्षता को प्रभावित किए बिना प्रशासकीय दृष्टि से दो विभागों में आरक्षित और हस्तांतरित विषयों पर विभाजन करना संभव नहीं था, और भारत सरकार के साइमन समीशन के संबंध में वक्तव्य पर इस विचार की पूर्णतया सहमति हुई। इसलिए यह विभाजन अपने आधार में प्रशासकीय नहीं है। यह विधिसम्मत आवश्यकता का परिणाम है। यह आधारभूत भेद है और इसके संबंध में कभी भी अपना ध्यान नहीं हटाना चाहिए।

यह विधिसम्मत आवश्यकता किस प्रकार उत्पन्न होती है? मेरा कहना है कतिपय विषयों को आरक्षित करने की विधिसम्मत आवश्यकता देशी राज्यों के कारण उत्पन्न होती है। मैं यह भी कहता हूं कि कतिपय विषयों को आरक्षित मानने के लिए आवश्यकता नहीं होगी, यदि संघीय शासन ब्रिटिश भारत के प्रांतों तक ही सीमित कर दिया जाए। विषयों का आरक्षण संघीय शासन में देशी राज्यों के प्रवेश का प्रत्यक्ष परिणाम है।

देशी राज्यों की स्थिति में यह क्या है कि कतिपय विषयों को आरक्षित विषय मानना आवश्यक है? इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व मैं आपका ध्यान भारत सरकार अधिनियम की धारा 180 की ओर आकर्षित करना चाहूंगा। धारा 180 में बताया गया है :

भारत मंत्री द्वारा अथवा उनकी ओर से इस अधिनियम के भाग–3 के लागू होने से पूर्व सम्राट के देशी राज्यों के साथ संबंधों के कार्यों को संपन्न करने के बारे में कोई भी अनुबंध अधिनियम के भाग–3 के लागू होने से प्रभावी माना जाएगा, मानों वह संविदा महामहिम सम्राट की ओर से किया गया है तथा तद्नुसार भारत मंत्री–इन–काउंसिल को इस अनुबंध के दिए गए संदर्भों का अर्थ लगाया जाएगा।

यह धारा उस विचार को वैधानिक रूप देती है, जिसे राजाओं ने बटलर समिति के समक्ष प्रस्तुत किया था और समिति ने स्वीकार कर लिया था कि देशी राज्यों की संधि इंग्लैंड के सम्राट के साथ है, न कि भारत सरकार के साथ।

दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि इस सिद्धांत से क्या निष्कर्ष निकलता है। अब इस सिद्धांत से जो कुछ भी निष्कर्ष निकलता है, वह अत्यंत जटिल है, परंतु दुर्भाग्यवश उचित सावधानी और ध्यान के बिना इसे आगे बढ़ जाने दिया गया है। राजाओं ने निश्चयपूर्वक कहा है कि चूंकि देशी राज्यों की संधि इंग्लैंड के सम्राट के साथ है, अतः उन संधियों के अंतर्गत आने वाले दायित्वों को पूरा करने का कर्तव्य और उत्तरदायित्व इंग्लैंड के सम्राट के ही हाथ में हैं, अतः ऐसी स्थिति में इंग्लैंड के सम्राट को इन दायित्वों को निभाने के लिए सर्वदा तैयार रहना चाहिए।

वह दायित्व क्या हैं, जो राजाओं के साथ संधियों के कारण इंग्लैंड के सम्राट पर आते हैं? इंग्लैंड के सम्राट पर आए दायित्व के नियम और संधियों के अनुकूल इंग्लैंड के सम्राट द्वारा यह दायित्व स्वीकार किया गया है कि राजाओं को आंतरिक विद्रोह तथा बाह्य आक्रमण से बचाया जाए।

सम्राट इस दायित्व को किस प्रकार पूरा कर सकता है? यह तर्क दिया जाता है कि सम्राट के लिए इस दायित्व को निभाने का एक ही उपाय है कि बाह्य मामलों तथा सेना को सम्राट द्वारा ही विशेष नियंत्रण में रखा जाए।

अब आप समझ सकते हैं कि मैं यह क्यों कहता हूं कि आरक्षित विषयों की आवश्यकता वैधिक आवश्यकता के कारण है। यह वैधिक आवश्यकता सम्राट के संधि संबंधी दायित्वों के कारण पैदा होती है और जब तक संधि के अनुसार संबंधों का आधार बना रहता है, जैसा कि धारा 180 में कहा गया है, तब तक आरक्षित विषय हस्तांतरित नहीं हो सकते। चूंकि आरक्षित विषय हस्तांतरित विषय नहीं हो सकते, अतः उत्तरदायी सरकार के लिए कोई स्थान नहीं है और औपनिवेशिक राज्य की तो और भी कम संभावना है।

मैंने अंतिम लक्ष्य की दृष्टि से संविधान का विश्लेषण किया है और उससे मेरा विश्वास है कि किसी को भी यह कहने में हिचक नहीं होगी कि यह संविधान एक स्थिर और कठोर संविधान है। इसमें परिवर्तन नहीं हो सकता, अतः इसका विकास नहीं हो सकता। यह ऐसा संविधान है, जिसकी जड़ पर ही कुठाराघात किया गया है और यह भारत के लोगों के लिए ही विचार करने योग्य है कि क्या वे इसे स्वीकार करेंगे।

अपने लक्ष्य की दृष्टि से मैंने इतने लंबे समय तक संविधान की जांच की है और मैं यह महसूस करता हूं कि इससे आपको जो कष्ट हुआ है, उसके लिए आपसे क्षमायाचना करूं। इस प्रश्न पर कुछ लोगों के दृष्टिकोण के कारण ही मैंने इस विषय का विस्तारपूर्वक विवेचन करने का प्रयास किया है और इस संबंध में मैं यही सफाई दे सकता हूं। मैं यह महसूस करता हूं कि कोई भी संविधान पूर्ण नहीं हो सकता। अपूर्णताएं रह जाती हैं। परंतु मैं सोचता हूं कि अपूर्णताओं और आंतरिक तथा सहज कमियों के बीच अंतर स्पष्ट कर लेना चाहिए। अपूर्णताओं का दूर किया जा सकता है। परंतु सहज कमियों को पूरा नहीं किया जा सकता। कांग्रेस अथवा उदारवादी संघ के प्रस्तावों में की गई मांगे यदि मान भी ली जाएं, तो वे अपूर्णताओं को दूर कर लेंगी। परंतु क्या वे कमियों को दूर करेंगी? मैं अपूर्णताओं की ओर ध्यान नहीं दूंगा, यदि मुझे आश्रवस्त कर दिया जाए कि कोई कमियां नहीं है। इस संविधान की सबसे बड़ी कमी यह है कि यह औपनिवेशिक राज्य की ओर अग्रसर नहीं होगा। कांग्रेस अथवा उदारवादी संघ में से कोई भी इस तथ्य से अवगत नहीं है कि यह कमी विद्यमान है। उनकी मांगो का भारत के राजनीतिक विकास के लक्ष्य से कोई संबंध नहीं है। वे उसका उल्लेख भी नहीं करते। यह आश्चर्यजनक बात है कि कांग्रेस के सदस्य राजनीतिक सत्ता हथियाने की संभावनाओं पर इतने मोहित हो गए हैं कि ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध उनकी मांगों में इस दिशा में ब्रिटिश सरकार की घोषणा का कोई उल्लेख नहीं है। परंतु यदि कांग्रेस भूल भी जाती है तो भारत के लोग नहीं भूल सकते और उन्हें भूलना भी नहीं चाहिए। यदि ऐसा किया गया तो यह घातक सिद्ध होगा। यह स्थिति किसी व्यक्ति विशेष के लिए उतनी ही घातक हो सकती है, जितनी कि लोगों के लिए यह भूल जाने पर होगी कि मार्ग का पड़ाव घर नहीं होता तथा बिना यह जाने हुए कि क्या वह मार्ग घर को जाता है अथवा नहीं, किसी भी मार्ग का अनुसरण करना अपने अपको गलत रास्ते पर ले जाना और गर्त में गिरना है।

आप मुझे गलत न समझें। मैं उतावला आदर्शवादी नहीं हूं। मैं अनुक्रमवाद में विश्वास करने वाले उस व्यक्ति की भर्त्सना नहीं करता, जो प्रतीक्षा करने तथा चीजों को किस्तों में लेने के लिए तैयार है, यद्यपि यह ऐसा व्यक्ति होता है जो एक रुपये के वैध दावे का अधिकारी है, परंतु केवल एक आना मांगता है और उस समय अपनी विजय घोषित करता है, जब उसे एक पाई मिल जाती है। ऐसे व्यक्ति को दया का पात्र ही मानना चाहिए। मैं जो कुछ ही चाहता हूं, वह यह है कि यदि परिस्थितियां अनुक्रमवादी बनने के लिए बाध्य करें तो हमें यथार्थवादी बनने से नहीं चूकना चाहिए। किसी भी एक किस्त के स्वीकार करने से पूर्व, हमें सावधानीपूर्वक इसकी जांच कर लेनी चाहिए और अपने को इस बात से संतुष्ट कर लेना चाहिए कि वह पूरे पूरे दावे का प्राप्ति का द्योतक है, अन्यथा जैसा प्रायः घटित होता है कि जो एक क्षण के लिए अति श्रेष्ठ है, वह दूसरे ही क्षण बेहतर स्थिति के लिए शत्रु बन जाता है।

आपमें से कुछ पूछना चाहेंगे कि भारत किस प्रकार औपनिवेशिक राज्य बन सकता है। मेरा उत्तर यह है कि भारत तभी औपनिवेशिक राज्य बन सकता है, जब संघ में सम्मिलित राजा इसको स्वीकार करने की अनुमति दें। यदि राजा लोग भारत के औपनिवेशिक राज्य बनने में आपत्ति करते हैं तो भारत को औपनिवेशिक राज्य का दर्जा प्राप्त नहीं हो सकता। संघ भारत के राजनीतिक विकास की डोर राजाओं के हाथों में थमाए हुए हैं। भारत का भाग्य राजाओं के द्वारा नियंत्रित किया जाएगा।

भविष्य के इस विचार को आप में से अधिकांश लोग अधिक अनोखा महसूस करेंगे। हम सभी संसद की सार्वभौमिकता के संबंध में डायसी के विचार से संतृप्त हैं। हम सभी ने उनसे सीखा है कि संसद सर्वोच्च है, यहां तक कि वह इतनी सर्वोच्च मानी जाती है कि वह पुरुष को महिला और महिला को पुरुष बनाने के सिवाय सब कुछ कर सकती है। यह अस्वाभाविक नहीं होगा कि आप में कुछ यह पूछें कि राजा लोग इस मार्ग में किस प्रकार से अवरोध पैदा कर सकते हैं, जबकि ब्रिटिश संसद सर्वोच्च है। आप इस प्रस्थापना को स्वीकार करने के लिए कुछ प्रयत्न करेंगे कि ब्रिटिश संसद को भारतीय संघ से संबंध में कोई सर्वोच्चता प्राप्त नहीं है। संघीय संविधान के परिवर्तन के संबंध में उसका प्राधिकार अब भारत सरकार अधिनियम में बहुत ही सीमित है।

भारतीय राजनीतिज्ञों ने अपने दुख और आक्रोश की भावना को उस तथ्य से अभिव्यक्त किया है कि भारतीय विधायकों को अधिनियम द्वारा कोई भी निर्वाचनकारी शक्ति नहीं दी गई है।

भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत संघीय विधानमंडल अथवा प्रांतीय विधानमंडल में से किसी के पास भी संविधान में परिवर्तन अथवा संशोधन करने की शक्तियां नहीं हैं। इस अधिनियम की धारा 308 के अनुसार केवल संघीय विधानमंडल और प्रांतीय विधानमंडल को यह अनुमति दी गई है कि वे संविधान में किसी भी परिवर्तन की सिफारिश करने हेतु कोई प्रस्ताव पारित कर सकते हैं और भारत मंत्री को इस बात के लिए बाध्य कर सकते हैं कि वह उस प्रस्ताव को संसद के दोनों सदनों में प्रस्तुत करे। यह बात अमरीका, आस्ट्रेलिया, जर्मन फेडरेशन और स्विट्जरलैंड के संविधान में वर्णित उपबंधों के विपरीत है। ऐसा कोई कारण नहीं है कि भारत में विधानमंडलों को कतिपय परिभाषित सीमाओं में इस प्रकार की संविधान निर्वाचनकारी शक्तियां नहीं दी जाएं, जब कि वे सभी वर्गों और सभी हितों के पूर्ण प्रतिनिधि हैं। चाहे जो कुछ भी हो, तथ्य यह है कि भारतीय विधानमंडल संविधान में कोई भी परिवर्तन नहीं कर सकते और आरक्षित विषयों को स्थानांतरित विषयों में नहीं बदल सकते। यदि संविधान में परिवर्तन किया जाना है तो इसका प्राधिकार केवल ब्रिटिश संसद के पास ही है। परंतु कुछ ही लोग इस तथ्य से अवगत हैं कि संसद भी संघीय संविधान में परिवर्तन करने की कोई शक्ति नहीं रखती। यह सत्य है और जितनी जल्दी हम इसका अनुभव कर सकें, उतना ही अच्छा है।

इस दृष्टि से अनुसूची–2 का महत्व आवश्यकता से अधिक नहीं समझा जा सकता। मुझे खेद है कि इसने इतना अधिक ध्यान आकर्षित नहीं किया, जितना कि इसे करना चाहिए था। अनुसूची–2 न केवल एक चार्टर है, अपितु एक चार्ट भी है, जिसके साथ संविधान गतिशील हो सकता है। इस पूरी अनुसूची की सावधानी से अध्ययन करना आवश्यक है। अनुसूची–2 में क्या कहा गया है? अनुसूची–2 में बताया गया है कि भारत सरकार अधिनियम के कतिपय उपबंधों को संसद द्वारा संशोधित किया जा सकता है और अधिनियम के कुछ अन्य निश्चित उपबंधों को संसद द्वारा संशोधित नहीं किया जा सकता। यह कहने का एक अन्य सरल तरीका है कि संसद सर्वोच्च नहीं है और संविधान में परिवर्तन करने का उसका अधिकार सीमित हैं।

उस समय क्या होगा कि संसद उस अधिनियम के उपबंधों को संशोधित करे, जिसके संबंध में अनुसूची–2 में कहा गया है कि इन उपबंधों को संसद द्वारा संशोधिक नहीं किया जाएगा? इस संबंध में उत्तर की दृष्टि से अनुसूची–2 में कहा गया है कि इस प्रकार का अधिनियम संघ में देशी राज्यों के विलय को प्रभावित करेगा, जिसका अर्थ होगा कि विलय–पत्र के संयोजनकारी स्वरूप को नष्ट करना। अर्थात यदि संसद द्वारा इस अधिनियम के किसी भी उपबंध में संशोधन किया जाता है, जिसके बारे में अनुसूची–2 में बताया गया है कि ऐसे उपबंध में संशोधन नहीं किया जाएगा, तो राजाओं को संघ से अलग होने का अधिकार प्राप्त हो जाएगा। मैं इस तथ्य से अवगत हूं कि कुछ प्रख्यात अधिवक्ताओं ने अलग विचार प्रस्तुत किया है। उसकी धारणा है कि यदि एक बार राजा लोग संघ में शामिल हो जाते हैं तो वे इससे बाहर नहीं जा सकते। मैं अपने मत को पहले ही अभिव्यक्त कर चुका हूं और उसे आप जितना योग्य समझे उतनी मान्यता दें, पर मैं यह कहना चाहूंगा कि मेरा मत नितांत आधारहीन नहीं है।

सेवा में,

नाम ....

पता ....

....

....

चाहे कुछ भी क्यों न हो हाउस ऑफ कॉमन्स में भारत सरकार के बिल पर बहस के दौरान महान्यायवादी और भारत मंत्री ने इसी प्रकार की व्याख्या की है, जैसा कि मैं अभिव्यक्त कर रहा हूं।

महान्यायवादी ने कहा था :

देशी राज्य ऐसे संघीय ढांचे में सम्मिलित होने के लिए सहमत नहीं होंगे, जो सीमाओं में निश्चित और असंदिग्ध है तथा स्पष्टतया हम बाद में इस ढांचे को पूर्णतया बदल नहीं सकत। इस वाक्य खंड का उद्देश्य यह है कि उन मामलों को प्रस्तुत करना चाहिए, जो आधारभूत अथवा विलय–पत्र से टकराए बिना परिवर्तित किए जा सकते हैं।..... यदि इस संरचना को आधारभूत ढंग से परिवर्तित किया गया तो अलबत्ता देशी राज्यों को यह स्पष्ट रूप से कहने का अधिकार मिल जाएगा कि यह ऐसा संघ नहीं है, जिसमें हमने अपने को सम्मिलित होने की स्वीकृति दी।

भारत मंत्री ने कहा था :

यदि आप उस बिल के कुछ भागों में संशोधन करते हैं जो देशी राज्यों को प्रभावित करता है, तो स्पष्टतया आप उन शर्तों में परिवर्तन करेंगे, जिनके अनुसार वे संघ में सम्मिलित होने के लिए स्वीकृति दे चुके हैं और निश्चय ही इससे एक ऐसी स्थिति पैदा होगी, जिसमें राजा लोग सही अर्थ में यह दावा कर सकेंगे कि उनके विलय–पत्र में परिवर्तन किया गया है। इसका निश्चय ही यह अर्थ है कि हम उस बिल के किसी भाग में संशोधन नहीं कर सकते, जो संधियों को प्रभावित करता है और जिनके अंतर्गत राजाओं ने सहमति व्यक्त की। यदि हम उनके विलय–पत्र को प्रभावित करने वाले बिल में कोई परिवर्तन करते हैं तो स्पष्टतया इससे वह समझौता भंग हो जाएगा, जो राजाओं और संसद के बीच में किया गया है तथा इसके बाद राजा लोग मुक्त हो जाएंगे।

प्रत्येक व्यक्ति द्वारा यह स्वीकार किया जाएगा कि राज्यों से जब संघीय ढांचे में सम्मिलित होने के लिए कहा जाएगा तो इस बिल की सामान्य योजना के अंतर्गत उन्हें संघ के कतिपय पक्षों के बारे में जानने का अधिकार होगा। यह एक बेतुकी स्थिति होगी, यदि किसी राज्य से इस महीने संघ में सम्मिलित होने के लिए कहा जाए और फिर यह सदन अगले महीने संघ के उपबंधों के आधारभूत पक्षों में परिवर्तन करे, जिसके लिए राज्य विलय के लिए तैयार हुआ था। इसलिए इस प्रकार की कोई अनुसूची आवश्यक है। इस बिल के वर्गीकरण द्वारा संवैधानिक कार्यप्रणाली में बदलाव लाए बिना संशोधन किया जाना चाहिए, जिसमें राज्यों ने विलय के लिए स्वीकृति दी है। अनुसूची की योजना अधिनियम के उपबंधों के बनाने के लिए है, जिनके संशोधन से राज्य के विलय–पत्र की वैधता प्रभावित नहीं होती है।

साभार :
बाबा साहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय
खण्ड–2, पृष्ठ संख्या 57 से 136
डॉ. अम्बेडकर